स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या

और

इसलाम की शिक्षा

१—स्वामी श्रद्धानन्दजी की हत्या की जिम्मेवारी उस मज़हबी तालीम पर है, जिससे प्रेरित होकर यह हत्या की गई।

२—वह शिक्षा जो अब्दुल रशीद को पैदा करती है, राष्ट्र के जातीय जीवन व राजनैतिक उन्नति के मार्ग में सबसे बड़ा ख़तरा है।

३—स्वामी श्रद्धानन्दजी की हत्या इसलामी असहिष्णुता-रूपी ज्वालामुखी के फटने की सूचना है। मुसलमान हिन्दुओं के भाई हैं पर इसलाम उन्हें भाई-चारे की शिक्षा नहीं देता।

४—इसलाम का ठीक रूप संसार को दिखा देना स्वामी श्रद्धानन्दजी की मृत्यु के बाद संसार की शांति के लिये सबसे बड़ी सेवा है।

५—जब तक इसलाम अपने वर्तमान रूप में उपस्थित है, संसार की शांति ख़तरे में है।

६—इसलाम की इस प्रकार की शिक्षा की घोर निन्दा करके उसे बन्द करने के लिये भगीरथ प्रयत्न की अपेक्षा है और उसके लिये एक विश्वव्यापी आन्दोलन की आवश्यकता है। मुसलमान

अपने अन्धविश्वास को त्याग कर सबको मित्र की दृष्टि से देखने लगें। इसी लिये स्वामीजी ने शुद्धि के महान् यज्ञ को शुरू किया था।

यह प्रसन्नता की बात है कि बहुत से मुसलमान भाइयों ने स्वामी श्रद्धानन्दजी की मृत्यु पर शोक के प्रस्ताव पास किये हैं और बहुतों ने यह भी कहा है कि कुरान इस प्रकार की हत्या की शिक्षा नहीं देता। भारतीय मुसलमानों में इतना भाव भी आना आशासूचक है किन्तु इस भयानक हत्या के पहले और पीछे की सब घटनायें इस बात को सिद्ध करती हैं कि स्वामीजी की हत्या का दोष एक अब्दुल रशीद पर नहीं किन्तु उस धर्म की शिक्षा पर है जो अब्दुल रशीद को उत्पन्न करती है। कहा जाता है कि इस हत्या की जिम्मेवारी न इसलाम और न भारत के मुसलमानों पर है किन्तु अकेले अब्दुल रशीद पर है। मौलाना आजाद ने कह दिया कि घातक पागल है और अदालत में उसे सचमुच पागल सिद्ध करने का यत्न किया गया है। मि० फूकन कहते हैं कि यदि यह सच है कि एक मुसलमान ने स्वामी श्रद्धानन्द को मार डाला है तो उन्हें यह समझ में नहीं आता कि कोई मुसलमान कैसे धर्म के खातिर एक गैरमुसलिम को मार सकता है। कई देशभक्तों ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि स्वामी श्रद्धानन्दजी की हत्या का संबंध कुरान वा इसलाम से नहीं है। स्वामी श्रद्धानन्दजी का कत्ल मानवी इतिहास में भयानक घटना है। हिन्दू जाति के

लिए यह और भी भयानक है। मालाबार में धर्मान्ध मोपला मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों से प्रारम्भ करके कोहाट के भयानक अग्निकाण्ड, सहारनपुर और देहली के दंगे और अन्त में स्वामीजी का कत्ल ये सब एक भीषण रोग की सूचना देते हैं। यदि स्वामीजी की हत्या एक मुसलमान के रोगी दिमाग का परिणाम होता तो स्वामीजी की अरथी पर पत्थर न बरसाये जाते और न अभियुक्त अब्दुल रशीद को गाज़ी बना कर उसकी तसवीरें दिल्ली और इलाहाबाद और मद्रास के बाजारों में बेचने की कोशिश की जाती। बंगलोर के मि० रज़नी के यह कहने पर कि स्वामी श्रद्धानन्द का हत्यारा स्वर्ग में नहीं नरक में जावेगा। वहाँ के मुसलमानों ने पत्र द्वारा उनको यहाँ तक धमकी दी कि वे जब मरेंगे उनको कबरस्तान में नहीं गाड़ने दिया जावेगा। मेरठ में स्वामीजी की हत्या के दिन मुसलमानों ने रोशनी की। डाक्टर सैफुद्दीन किचलू और मौ० मुहम्मद अली ने जामा मसजिद में मुसलमानों से यह प्रार्थना करवाई थी कि अभियुक्त अब्दुल रशीद बेगुनाह साबित हो। ये सारी बातें सिद्ध करती हैं कि इसलाम की शिक्षा इस सब की तह में है। अभियुक्त अब्दुल रशीद का जो बयान हत्या के दिन अखबारों में छपा है उसमें उसने यह कहा है कि मैंने एक काफ़िर को मारा है और बहिश्त में जाऊँगा—मौलाना मुहम्मद अली कहते हैं कि यह कोई बड़ा बहादुर है जो इस दिलेरी से कहता है कि हाँ मैंने कत्ल किया है। कितने ही प्रसिद्ध लेखकों और नेताओं

शद ने स्वामीजी को इसलाम का शत्रु कहा था और उनकी हत्या करनेवाला उनको मार कर अपने विचार में 'ग़ाज़ी' बना है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि स्वामीजी की हत्या की ज़िम्मेवारी मारनेवाले पर नहीं किन्तु इसलाम की शिक्षा पर है जो अपने अनुयायियों को यह उपदेश देती है कि खुदा और मुहम्मद साहेब दोनों या एक को न माननेवाले काफ़र हैं और काफ़िर को मारना मुसलमानों का कर्तव्य है और काफ़िरों का घातक ग़ाज़ी कहाता और बहिश्त में जाता है।

जिस असहिष्णुता की शिक्षा ने गुरु तेगबहादुर का सिर लिया, जिसने गुरु गोविन्दसिंह के बच्चों की बलि ली, जिस इसलाम की मज़हबी प्यास को बुझाने के लिए बन्दे बैरागी और हक़ीक़तराय का खून बहाया गया, जिस तास्सुबी इस्लामी तलवार द्वारा धर्म वीर लेखराम बलिदान हुए उसी इस्लाम की शिक्षा ने शूरवीर नेता स्वामी श्रद्धानन्द के प्राण लेने का दुस्साहस पैदा किया। स्वामीजी को मारनेवाला या अन्य मुसलमान हमारे भाई कहे जा सकते हैं पर इस्लाम की इस प्रकार की शिक्षा हिन्दुओं का ही नहीं मनुष्य मात्र का शत्रु है और भारत की स्वतंत्रता, जातीय एकता के मार्ग में भारी रुकावट है। जब तक इस्लाम का यह वर्तमान रूप भारत में मौजूद है और जब तक यहाँ के मौलवी और मौलाना अपने अनुयायियों को यह शिक्षा देते रहेंगे कि हिन्दू काफ़िर हैं या काफ़िर को मारनेवाला ग़ाज़ी बनकर बहिश्त में जाता है तब तक हिन्दू-मुसलिम एकता का

प्रश्न कभी हल नहीं हो सकता। भारत के दुःख तभी दूर होंगे जब टर्की की तरह यहाँ के मुसलमान कुरान की असहिष्णुता और क्रूरता से भरी इस शिक्षा को त्याग देंगे। यदि भारत में कोई भी सुधार अभीष्ट है तो इस्लाम की इस शिक्षा से पहले युद्ध करना होगा। विचारों की स्वतन्त्रता, प्रचार की स्वतंत्रता, बुद्धिवाद इन सब का इस्लाम शत्रु है। जिन लोगों ने कुरान और इस्लाम के खून से रंगे हुए इतिहास का अध्ययन किया है; वे सब इस बात का भले प्रकार जानते हैं। हम कुरान की आयतों और हदीसों से यह दर्शाना चाहते हैं कि इस्लाम इतर धर्मावलम्बियों के साथ किस क्रूरता के व्यवहार का उपदेश करता है। किस तरह सहिष्णुता बुद्धि, तर्क, युक्ति, दया और न्याय को अर्द्धचन्द्र देकर इसने बाहर निकाला है। 'हरचे शक आरद काफ़िरे गर्दद' कुरान की ही शिक्षा का परिणाम है। धर्म प्रचार के लिए तलवार चलाने की आज्ञा कुरान को छोड़ कर और किसी पुस्तक में नहीं मिलती।

इसलाम की शिक्षा कुरान के शब्दों में

अपनी बातों को मैं कुरान की आयतों से ही सिद्ध करना चाहता हूं। ये आयतें मिर्ज़ा अबुल फजल के कुरान के अंग्रेजी अनुवाद से उद्धृत की गई हैं। अनुवादकों ने काफ़िर का अनुवाद Disbeliev r, Misbeliever या Ungodly किया है। हमने असल का शब्द काफ़िर अनुवाद में रहने दिया है।

कुरान किस को काफ़िर कहता है :—

The faithful are only those who believe in God and his apostle

अर्थात् जो खुदा और मुहम्मद साहेब को पैगम्बर मानते हैं वह मुसलमान हैं। सूरा अलनूर

Verily the religion with God is Islam. Page 602 Vol II Sura alimran.

And he who seeks other. than Islam for a religion, it shall not be acce Pted of him and he shall lie in the hereafter of the losers.

How shall God guide a people who are kofirs.

Page 698 Vol II Swa alimran.

अर्थ—इसलाम ही एक खुदा का मज़हब है जो किसी अन्य धर्म को स्वीकार करेगा खुदा उससे खुश न होगा, वह मर कर घाटा उठावेगा। खुदा काफ़िरों को रास्ता नहीं दिखाता। सूरा अलइमरान।

खुदा को मानने पर मुहम्मद साहब को न मानने से मनुष्य काफिर ही रहता है।

O ye who believe, fear God and believe in his apostle.

अर्थात् ऐ मुसलमानो! खुदा से डरो और मुहम्मद का पैगम्बर मानो।

. इसलाम के प्रचार के लिये काफ़िरों से लड़ने और उनको मारने की कुरान में आज्ञा—

And fight kafirs until there be no discord, and the religion be wholly of God.

Page 567 Vol II Sura. Ifal

अर्थात् काफ़िरों से उस वक्त तक लड़ो जब तक सारी दुनिया में इसलाम न फैल जावे। सूरा इंफाल

When thy Lord inspired the angels—I am with you, so make firm those who believe· presently will I cast into the hearts of those who are kafirs dread; so strike off the necks; and strike off from them every finger tip.

Page 558 Vol II.

अर्थात्—खुदा कहता है कि ऐ मुहम्मद तू मुसल्मानों को दृढ़ कर और उनसे कह दे कि काफ़िरों के दिलों में मैंने भय डाल दिया है। वे काफ़िरों की गर्दनें काट देवें यहां तक कि अँगुलियों के भी टुकड़े कर देवें। सूरा इन्फाल

Muhammad is the apostle, of God and those who are with him are severe to the kafirs, compassionate among themselves. Page 922 Vol II Sura Fatah.

अर्थात्—मुहम्मद· खुदा का पैगम्बर है—जो उसके साथी का अनुयायी है वे काफ़िरों के लिये भयानक है, उनसे कठोरता करते हैं पर आपस में प्रेम से रहते हैं। सूरा फ़तह

And when the sacred months are passed kill the polytheists, wherever ye find them, and seize them and besiege them and lay in wait for them in every ambush.

but if they repent and are steadfast in prayer (Namaz) and give alms then let them go their way, verily God is Forgiving, Compassionate,

अर्थात् जब पवित्र महीने गुज़र जावें तब मूर्तिपूजकों को जहां पाओ मार डालो उनकी घात में छिप कर बैठो और छुप कर मारो। पर यदि वे तोबा करें (इसलाम कबूल करें) और नमाज पढ़ें तो उन्हें अपने रास्ते जाने दो, छोड़ दो खुदा दयालु बख्शने वाला है।

जो मुसलमान यह कहते हैं कि सिर्फ लड़ाई में ही काफ़िरों को मारने की कुरान में आज्ञा है वे पबलिक को बहकाते हैं। इसी आयत को कुरान के भाष्यकार "लाइकराह फिद्दीयें" वाली आयत जिसमें लिखा है कि मज़हब में ज़बरदस्ती नहीं है को नासिख अर्थात् रद्द करनेवाला मानते हैं। इसमें स्पष्ट लिखा है अगर काफिर इसलाम कबूल न करे तो उन्हें मार डालो।

O ye who believe, take not, your fathers, and your brothers for patrons if they love infidelity, (kufr) above faith; and whoso ever of you takes them for patrons—these they are the wrongdoers.'

Page 958 Vol II Sura Toba.

अर्थात् ए मुसलमानो ! तुम अपने बाप, भाई का भी साथ मत करो। उन्हें बड़ा मत मानो यदि वे काफिर हैं और जो उनका साथ देगा पापी होगा।

Fight those who believe not God and the day of the here after, and forbid not what God and His apostle have forbidden, and who practise not the religion of truth among those who have been given the book until they pay the tribute (Jazia) out of hand and are humbled.

अर्थात् लड़ो उन लोगों से जो विश्वास नहीं रखते अल्लाह पर, न पिछले दिन पर (अर्थात् कयामत पर) न हराम जानें, जो हराम किया अल्लाह ने और रसूल ने और न कबूल करें दीन सच्चा वह जो किताव वाले हैं। (अर्थात् यहूदी वा ईसाई आदि) यहां तक कि देवे जज़िया सब एक हाथ से और होवें बे कदर। सूरा तोबा।

O thou pro phet, strive against kafirs and hypocrites (Monafiks) and be stern against them, and their abode is Hell and evil the Journey. Poge 982 Vol II Sura toba.

अर्थात ए मुहम्मद तू काफिर और मोनाफ़िकों से लड़ और उन पर सख्ती कर उनका स्थान नरक है, वह बुरी जगह पहुँचे। इस आयत को "धर्म में बलात्कार नही है" वाली आयत का नासिख बतलाया जाता है।

O ye who believe fight those who are near to you of the kafirs and let them find in you sternness, and know that God is with the pious.

Page 1006 Vol II Sura Toba,

अर्थात् ए मुसल्मानो अपने नज़दीक के काफ़िर से लड़ो और तुम में वह पावें सख़्ती और उन्हें पता लगे कि अल्लाह मुसलमानों के साथ है । सूरा तोबा ।

लड़ते रहो लोगों से जब तक कि वे मुसल्मान न बन जावें।

Say thou to those who were left behind of the Arabs of the desert, Now shall ye be called forth against a people of severe Violence, ye shall fight them, or they shall be (become) Muslims. And if ye obey, God will giv you a goodly recompense, but if ye turn back as ye turned back before He will torment you with a painful torment.

page 916 Vol II Sura Toba.

अर्थात् ए मुहम्मद ! तू पीछे रह जानेवाले अरब लोगों से कह दे कि उनको उन लोगों से लड़ना पड़ेगा जो बड़े क्रूर हैं। और या तो वे मुसलमान बन जावेंगे या लड़ाई जारी रहेगी जब तक शत्रु मुसलमान न बने। इसके लिए अल्लाह तुमको बहुत उत्तम प्रतिफल देगा; पर यदि तुम मुख मोड़ोगे तो बहुत दुःख से पीड़ित किए जाओगे।

So when ye meet those who disbelive strike off their necks, untill ye have slaugh tered them, then bind fast the bonds.

And those who are killed in the way of God, He will never make their work go wrong.

And He will make them enter the garden of which he has told them.

Page 581 Vol II Sura Mohammad.

अर्थात् काफ़िरों को जहां पाओ कत्ल करो और जकड़ लो। जो काफ़िरों से लड़ते हुए मारे जाते हैं वे वहिश्त में जाते हैं। सूरा मुहम्मद।

O thou prophet, urge on the faithful to fight; if there be of you twenty to persevere they shall conquer two hundred. and if there be you an hundred, they shall conquer a thousand of those who are kafir tor that they are a people who do not discern.

Page 577 Vol II Sura Infal.

अर्थात् ए मुहम्मद! मुसलमानों को क़ाफ़िरों से लड़ने के लिए प्रेरणा कर उनसे कह दे कि यदि तुम बीस होगे तो २०० को और यदि १०० होगे तो १००० काफ़िरों को जीत लोगे – क्योंकि काफ़िर देखते नहीं।

जो मुसलमान ये कहते हैं कि इस्लाम किसी से पहले लड़ने या वार करने की आज्ञा नहीं देता वह इस्लामिक शिक्षा के सरासर विरुद्ध कहते हैं। यहाँ तो बिना कारण काफ़िरों को मारने का स्पष्ट उपदेश है। इसी के उत्तर में शायद गुरु गोविन्द सिंह जी ने कहा था:—

गीदड़ों से मैं शेर लड़ाऊँ। चिड़ियों से मैं बाज़ मराऊँ॥
सवालाख से एक लड़ाऊँ। तो गोविन्दसिंह नाम धराऊँ॥

जिस समय हज़रत मुहम्मद साहब अरब में अपने नूतन सम्प्रदाय, इस्लाम धर्म, का प्रचार कर रहे थे उस समय अरब में कई प्रकार के मनुष्य निवास करते थे। मुख्य कर यहूदी; ईसाई; सावईल तथा अरब के मूर्तिपूजक कुरैश आदि इस द्वीप में बसते थे। बौद्ध धर्म के सदृश इस्लाम का प्रचार केवल उपदेश मात्र से न तो हज़रत मुहम्मद साहब के समय में ही हुआ और न उनके पश्चात् उनके प्रतिनिधियों के समय में ही। वरन उपदेश के साथ साथ अस्त्रशस्त्र को धर्म प्रचार करने में बड़ा जबर्दस्त साधन माना जाता था। इस्लामी इतिहास पढ़ने से विदित होता है कि *अधिकांश इस्लाम का* प्रचार इस साधन से हुआ है जिसका स्पष्ट आदेश कुरान में तथा हदीसों में विद्यमान है और इस्लामी इतिहासों में भी इसका उल्लेख पाया जाता है।

मुसलमान बादशाहों ने अपने अधीनस्थ देशों में कैसे अत्याचार तथा ज़ोर ज़ुल्म के साथ इस्लाम का प्रचार किया यह बात इतिहास पढ़ने वालों पर अच्छी तरह प्रकट है। बीसवीं शताब्दी के शिक्षित मुसलमान प्रायः इस कथन को अपने धर्म पर कलङ्क समझते हैं और यह दिखलाने की चेष्टा करते हैं कि मुसलमानों ने धर्मप्रचारार्थ कभी भी अस्त्र-शस्त्र का सहारा नहीं लिया और जो कतिपय ऐतिहासिक विद्वान ऐसा लिखते हैं उनका उद्देश्य ऐसे लेखों द्वारा इस्लाम को बदनाम करने का है। अतः हम इस लेख में जो प्रमाण उद्धृत करेंगे वह प्रायः

सबके सब ऐसे प्रामाणिक ग्रन्थों से ही करेंगे जिसे इस्लामी जगत के मानने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं है और जो कुरान आदि की आयतें होंगी उनके भाष्य भी प्रामाणिक ही होंगे। अस्तु, निष्पक्ष विद्वान स्वयं सत्यासत्य का निर्णय कर इस विषय में चाहे जैसी राय स्थिर करें।

आजकल कतिपय मौलवी अपने सम्प्रदाय को इस कलंक से मुक्त सिद्ध करने के लिये कुरान से एक आयत पेश किया करते हैं और उसका अर्थ करके यह दिखलाने की चेष्टा करते हैं कि कुरानी शिक्षा यह है कि धर्म के विषय में किसी पर बलात्कार नहीं करना चाहिये। भोले भाले मनुष्य प्रायः इस बात को ठीक समझ बैठते हैं। कारण कि इन्होंने यथा तथ्य स्वाध्याय तो किया ही नहीं है और न इस्लाम के इतिहास ही से अवगत हैं अतः सबसे प्रथम इसी पर यह विचार किया जाता है।

"ला इकराह फिद्दीने कद्‌र तबैयनर्रुशदो मिन लगैये।" कुरान सूरत अलबकर रकुअ ३४ में यह आयत है।

मौलाना मुहम्मद अली साहब अंग्रेजी में इस आयत का अनुवाद इस प्रकार करते हैं:—

"There is no Compulsion in relgion. truly the right way has become clearly distinct from wrong

अर्थात् धर्म में बलात्कार नहीं है निश्चय पूर्वक सन्मार्ग असन्मार्ग से पृथक हो चुका है।

और इस आयत पर यह टिप्पणी चढ़ाते हैं:—

"To all the non-sense which is being talked about the Propht offering Islam and swórd as alternatives to the pagan Arabs this verse is a sufficient answer. Being assured of sucess the Muslims are told that when they hold the power in their hand their guiding principle should be no Compulsion in the matter of religion......"

अर्थात् मुसलमान धर्म के प्रवर्तक नबी के विरुद्ध जो यह प्रलाप किया जाता है कि उसने मूर्ति-पूजक अरबवासियों को इस्लाम और तलवार दो ही विकल्प दिये थे इसका यह आयत काफ़ी जवाब है। अपनी सफलता को निश्चय जान कर मुसलमानों को कहा गया है कि जब उनके हाथों में शक्ति हो तो धर्म में किसी पर अत्याचार न करना ही उनका पथदर्शक सिद्धान्त होना चाहिये।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि उपर्युक्त आयत से स्पष्ट है कि धर्म प्रचार में बलात्कार करना ठीक नहीं है। परन्तु विचार करके देखा जाय तो ज्ञात होगा कि उपर्युक्त आयत के द्वारा जनता को महान धोखा दिया जा रहा है और सत्य बात को छिपाने की चेष्टा की जा रही है। कुरान पढ़नेवालों पर विदित है कि कुरान का अर्थ तथा भाष्य करने में कतिपय विद्याओं की आवश्यकता है जिनके जाने बिना कुरान का वास्तविक अर्थ कोई नहीं समझ सकता। उन कतिपय विद्याओं में से [१]

"इल्मे शाने नजूल" [अर्थात् इस बात की विद्या की कौन आयत किस स्थान पर किस समय तथा किस मनुष्य के सम्बन्ध में उतरी] तथा [२] इल्मे नासिख मनसूख [अर्थात् इस बात का ज्ञान कि कौन सी आयत कुरान में मनसूख हो गई तथा उस आयत को मनसूख करनेवाली कौन सी आयतें हैं] इनके जाने बिना आयतों का यथार्थ अर्थ कोई जान ही नहीं सकता। सब से प्रथम यह कहना है कि कुरान की उपर्युक्त आयत जो हज़रत मुहम्मद साहेब पर उतरी उसके उतरने का क्या कारण था तथा किसके सम्बन्ध में उतरी।

शेख इब्न कसीर ने कहा है कि विद्वानों ने वर्णन किया कि इस आयत के उतरने का कारण अनसार की एक जाति के सम्बन्ध में है यद्यपि इसकी आज्ञा सब के लिये समान है। फिर इब्न-ज़रीर के सनदों से इब्नआब्बास से रवायत की कि अनसार में कतिपय ऐसी स्त्रियाँ थीं जिनका बच्चा जीवित नहीं रहता था तो वह उस बच्चे के जीवन रखने के लिये यह प्रतिज्ञा कर लिया करती थीं कि यदि मेरा बच्चा जीवित रहेगा तो मैं इसे यहूदी सम्प्रदाय में कर दूँगी। फिर जब बनुज़ीर को देश निकाल दिया गया तो इनमें अनसार के ऐसे बेटे भी थे अतः अनसार ने कहा कि हम अपने बेटों को नहीं छोड़ेंगे अर्थात् जाने न देंगे। इस पर अल्लाह तआला ने फ़रमाया।

"ला इकराह फ़िद्दीने' क़द०, इत्यादि।"

अर्थात् धर्म में बलात्कार नहीं है।

इस कथा के सत्य होने में बड़े बड़े मुसलमान धर्माचार्यों

की साक्षी है। यथा (१) आबूदाऊद (२) नसाई (३) इब्न अबीहातिम (४) मोजाहिन्द (५) सईद बिनजबीर (६) शअबी (७) हसन बसीर इत्यादि। (देखो तफसीर मवाहिबुर्रहमान उक्त आयत के भाष्य में पृष्ठ १९।)

उपर्युक्त कथा के सम्बन्ध के साथ साथ आयत का अर्थ करने से स्पष्ट है कि इस आयत का उद्देश्य यह था कि अनसार स्त्रियों को जो अपने लड़कों को उनकी इच्छा के अभाव में उन्हें यहूदी बना दिया करती थीं उन्हें ऐसा करने से रोका गया। अर्थात् यहूदी किसी को इस प्रकार न बनाया जाय। परन्तु अन्य-मतावलम्बियों पर बलात्कार करके उन्हें मुसलमान बनाया जावे इस बात का निषेध इस आयत में नहीं है। वरन् तफसीरों के पढ़ने से उलटा ही परिणाम निकलता है।

मौलवी सय्यद अमीर अली साहेब ने इस आयत के भाष्य में कतिपय विद्वानों के कथन उद्धृत किये हैं उनमें से एक कथन यह है कि ।"यह आयत मनसूख है, इसलिये कि इसमें धर्म में बलात्कार करने का निषेध है। हालाँ कि स्वयं हज़रत मुहम्मद साहेब नेअरबनिवासियों पर इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिये बलात्कार किया और इनसे लड़े यहाँ तक कि वह लाचार होकर मुसलमान बन गये और सिवाय मुसलमान होने के हज़रत और किसी बात पर राज़ी न हुए।" इत्यादि।

(देखो तफसीर जामिउल बयान मवाहिबुर्रहमान उक्त आयत का भाष्य पृ० १८।)

मौलवी मुहम्मद अली ने इस आयत पर टिप्पणी चढ़ाने के पूर्व इसके शाने नजूल पर कुछ विचार नहीं किया और न इसी ओर ध्यान दिया कि आयत इस्लामी विद्वानों के सिद्धान्तानुसार मनसूख है अर्थात् इस आयत की आज्ञा उठा दी गई। अतः इस्लाम का यह सिद्धान्त नहीं रहा अन्यथा स्वयं हज़रत मुहम्मद क्यों अरबों पर इस्लाम स्वीकार करने के लिये वलात्कार करते। अब देखिये इस आयत के नासिख अर्थात् इसकी आज्ञा को रद् करनेवाली जो आयतें हैं उनमें क्या भाव झलकते हैं। तफ़सीर हुसैनी का कर्त्ता भी लिखता है:—

हुक्म ई आयत व आयत क़ताल मनसूख अस्त अज़ तमाम क़वायले अरब जुज़दान इस्लाम कबूल नः बूँद।

अर्थात् इस आयत की आज्ञा कताल (युद्ध) की आज्ञा के साथ से मनसूख है। अरब के समस्त परिवारों से सिवाय इस्लाम के और कुछ स्वीकार नहीं किया गया। इत्यादि।

इस आयत के नासिख कतिपय आयतें वतलाई जाती हैं यथा:—

"या ऐय्योहल्लजीन आमिनूं क़ातलुल्लज़ीन यलूनकुम मिनलकुफ्फ़ारे वलयजेदू फ़ीकुम गिलज़तन व आलेमू अन्नल्लाह मअलमुत्तक़ीन।"

स्वयं मौलाना मुहम्मद अली इस आयत का अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार करते हैं।

"O" You who believe fight those of the un-belivers who are near to you and let them find in you hardness,

and know that Allah is with those who guard (against evil) Sura Toba. Page 1006.

सैयद् अमीर अली साहेब इसका उर्दू अनुवाद इस प्रकार करते हैं:—

"अय ईमानवालो ! लड़ते जाओ अपने नज़दीक के काफ़िरों से और चाहिये उन पर मालूम हो तुम्हारे बीच में सख्ती और जानो कि अल्लाह है साथ डर वालों के।"

मौलवी साहब ने इस आयत पर उलमाओं का कथन उद्धृत किया है कि मुसलमानों को आज्ञा दी कि सब से निकट मिले हुए काफ़िरों से जहाद आरम्भ करें। फिर जब उनको सन्मार्ग प्राप्त हो जावे और उनका फ़ितना और फसाद मिट जावे तो पुनः जो उनके निकट हैं उनसे जहाद करें इसी क्रम से चलें और ऐसा है जैसे हज़रत मुहम्मद साहेब को हुक्म हुआ था......... अर्थात प्रथम आँ हज़रत ने अपनी जातिवालों से क़ताल किया फिर दूसरे हिजाज़ वालों से, फिर शेष अरबवालों से फिर गज़ब ये तबूक में शाम वालों पर चढ़ाई की...........इत्यादि.. ....देखो उक्त आयत का भा० पृ० ७१।

फिर आगे चलकर लिखते हैं कि हजरत मुहम्मद साहब के पश्चात् उनके परम मित्र हज़रत अबूबकर सिद्दीक़ ने जो पहिले खलीफा थे मुसलमानों को रूम पर जहाद करने के लिये भेजा और विजय होने लगी। आबुबकर के पश्चात हज़रत उमर बिन खताब खलीफा हुए जो इस्लाम धर्म में बहुत पक्के थे अतः

उनकी बर्कत से रूम के काफ़िरों पर जो सलीब को पूजते थे और फ़ारस के गिब्रों पर जो अग्नि पूजते थे बहुत सख़्ती और कड़ाई की जैसी अल्लाह की आज्ञा है।

"वलयजेदू फ़िकुम गिलज़तन।"

"और चाहिये कि पावें काफ़िर लोग तुम में सख़्ती और मजबूती।"

अब इसमें सन्देह नहीं रहा कि कुरान में काफ़िरों पर बलात्कार करने की स्पष्ट आज्ञा है और वह आयत पूर्व की आयत को रद करती है। अब हम दूसरी आयत को उद्धृत करते हैं, इसे भी उस आयत का नासिख़ ही बताया जाता है।

"या हेय्योहन्नबीयो जाहिदुल कुफ्फ़ार वल मुनाफ़ेक़ीन वग़लिज़् अलैहिम् व मावाहुम् जहन्नुम बेसलमसीर (सूरातोबा रकुअ १० आयत ७३।)

अर्थात् अय नबी! लड़ाई कर काफ़िरों और मोनाफ़िक़ों से और तुन्दख़ोई (कड़ाई का व्यवहार) कर उन पर उनका ठिकाना दोज़ख़ है और वे बुरी जगह पहुँचे"।
अनुवाद सय्यद अमीर अली।

मौलवी साहेब टिप्पणी में लिखते हैं—

"अल्लाह ताला ने इस आयत में रसूल मुहम्मद सलअम को और उनके समस्त अनुयायियों को कयामत तक आज्ञा दी, कि काफ़िरों से लड़ते रहो। लाईकराह फ़िद्दी ने अर्थात् 'धर्म में बलात्कार नहीं करना चाहिये' इस आयत का नासिख़ (रद्द

करने वाली) यह आयत है जिससे स्पष्ट है कि मुसलमानों को काफ़िरों के साथ दीन इस्लाम स्वीकार करने के लिये युद्ध करना चाहिये। जैसा स्वयं हज़रत मुहम्मद तथा उनके प्रतिनिधियों ने किया।

अब एक और नासिख़ उद्धृत करते हैं, विचार कीजिये—

"क़ुल् लिल् मोख़ालेफ़ीन मिनल एराब सतद्औन एला क़ौमिन अवलाव से शदीदिन तोक़ातेलूनहुन अव यसलेमून्।" सूरा फतह आयत ११।

अर्थात् (अय मुहम्मद) पिछड़ने वाले गँवारों से कह दे (अर्थात् उन अरबों से जो इनके अनुयायी थे) शीघ्र तुम लोग लड़ाई में बुलाये जाओगे, ऐसी जाति से जिनकी लड़ाई सख्त है। तुम उनसे लड़ते रहोगे या वे मुसलमान हो जायँगे, (अर्थात् दोनों बातों में से एक बात होगी) चाहे तो वे लोग मुसलमान हो जावें या उनसे लड़ायी जारी रहे—पृ० १३१-१३२।

इस आयत में युद्ध करने का उद्देश्य स्पष्ट है अर्थात् चाहे तो वे मुसलमान हो जावें या उनके साथ लड़ाई जारी रहे।

अब विचारना यह है कि जब स्वयं क़ुरान में अनेक स्थानों पर काफ़िरों को युद्ध में पराजित करके तथा उन पर बलात्कार करके उन्हें मुसलमान बनाने की आज्ञा व फर्मान है तो इस बीसवीं शताब्दी में जो मुसलमान इसे छिपाने की चेष्टा करते हैं सब निरर्थक है।

और मुनाफ़िक़ों से जो मन वचन और कर्म से मुसलमानों

के विरुद्ध हैं जहाद करें और उन पर कड़ाई सख़्ती और करें"
इत्यादि—पृ० १७९ ।

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि अरबों को मुसलमान बनाने के लिए उन पर बलात्कार करने की जबर्दस्त आज्ञा थी। पराजित लोगों से और अनेक शर्तों पर मेल हो सकता है पर हज़रत मुहम्मद साहेब ने अरबों के साथ और कोई शर्त स्वीकार नहीं की चाहे तो वे मुसलमान ही हो जायं अथवा उनके साथ लड़ाई जारी रहे। उपर्युक्त प्रमाण तो सब कुरान से उद्धृत किये गये आगे चल कर हदीसों तथा मुसलमानी इतिहासों से भी प्रमाण उद्धृत कर स्पष्ट किया जायगा कि मुसलमानों ने धर्म के कारण कितना बलात्कार किया है।

अरबों के अतिरिक्त और इतर जातियों के सम्बन्ध में कुरान में क्या आज्ञा है सो भी अवलोकन कीजिये।

(१) देखिये सूरत तोबा। पृष्ठ ९६१

"क़ाति लुल्लज़ीन ला यूमिनून बिल्लाहे वलाबिल यौमिल आखिरे वाला यहिर्रमून मा हर्रमल्ला हो व रसूल हू व ला यदीनून दीन 'लहक्के मिनल्लज़ीन ओतुल किताब हत्ता योतुल जिज़यत ऐय्यदिंव्व हुम सागेरून।"

अर्थात् लड़ो उन लोगों से जो विश्वास नहीं रखते अल्लाह पर, न पिछले दिन पर (अर्थात् कयामत पर) न हराम जाने; जो हराम किया अल्लाह ने और उसके रसूल ने और न कबूल करे दीन सच्चा वह जो किताब वाले हैं। (अर्थात् यहूदी व

ईसाई आदि) यहां तक कि देवे ज़िज़या सब एक हाथ से और वे बेकदर हैं।

हाफ़िज़ ने लिखा है कि अरब के द्वीप में सुधार होने के पश्चात् हिजरी सम्वत् ९ में यह पहिली आज्ञा किताब वालों पर जहाद की आई इसलिये आं हजरत सलअम जो अत्यन्त गर्म्म तथा अकाल के समय में ३० हज़ार मदीना तथा आस पास के लोगों को एकत्र करके रूम वालों के क़ताल का इरादा किया जिस युद्ध का नाम गज़ब-ये तबूक है और इसी युद्ध से कितने मुसलमान भी पिछड़ रहे थे····(पृ० ६२)

आयत के अन्तिम भाग में कहा गया है कि "हत्ता योतुल जिज़यत येय्यदिंव्वहुम सागिरून्"

इसपर मौलवी साहेब लिखते हैं—

यहां तक क़ताल करो कि वे लोग जिज़या दें हाथ से दरा हाले के वे जलील होने वाले हों याने क़ताल किये जाओ यहां तक कि अगर इस्लाम लावें तब राह रास्त पर आ जावेंगे पर तुम्हारा और उनका हाल एक सा हो जायगा और दीन में तुम्हारे भाई हो जायेंगे और या इस्लाम न लावेंगे तो जिज़या दें अपने हाथ से जिल्लत वो ख्वारी के साथ क्योंकि कुफ्र पर क़ायम रह कर तुम्हारे बराबर वाले नहीं हो सकते हैं।

स्पष्ट है कि या तो वे मुसलमान बना लिए जावें या अपमान के साथ जिज़या देने पर राजी हों। परन्तु एक हदीस है जिसे मौलवी साहब उक्त पृष्ठ में स्वयं उद्धृत करते हैं—

ओमिरतो अन अक़ातिलुन्नासहत्ता यक़ूलू लाईलाह इल्ल-ल्लाहो इत्यादि।

अर्थात् हजरत कहते हैं कि मुझे हुक्म दिया गया कि लोगों से क़ताल करूं यहां तक कि कहें लाइलाहइल्ल० इत्यादि।

इस हदीस में लोगों से जज़िया लेने की आज्ञा नहीं है वरन् उन्हें मुसलमान ही बनाने की ताकीद है तो फिर उपर्युक्त कुरानी आयत की संगति कैसे लगती है इसका उत्तर उक्त मौलवी साहेब यों देते हैं—

"हदीस में अन्नास शब्द जिसका अर्थ "लोग" है उससे तात्पर्य्य अरब के अनेक देवपूजक हैं क्योंकि उनके प्रति आज्ञा थी कि उन्हें बलात्कार से मुसलमान बनाया जाय बदले में उनसे जज़िया आदि न लिया जावे। परन्तु अरब में जो यहूदी नसोरा थे उनसे जज़िया भी कबूल है। पृ० ६५

इमाम सेशाफ़ाई वह अहमद आदि ने इसी आयत से सिद्धान्त निकाला है कि जिज़या सिवाय अहले किताब के और किसी किस्म के काफिरों से कबूल न होगा। पृ० ६५

अब इसमें क्या सन्देह रहा कि मुसलमान बनाने के लिये बलात्कार की स्पष्ट आज्ञा है।

हदीस 'सही मुसलिम में' इसपर एक हदीस है, यथाः—जिन काफ़िरों पर जहाद कियाजावे पहिले इनको दावत इस्लाम दी जावेऔर मालानारह ने कहाहै कि तीन बार समझाना उचित है फिर न माने तो इनसे सुलह और जज़िया दोनों को कहा जावे

फिर इसको भी न मानें तो आखिर इनसे क़ताल किया जावे इत्यादि—पृ० ९६।

जिज़्या शब्द अरबी धातु जज़ा से बना है जिसका अर्थ है—जज़ाय कुफ़ व शिर्को फसाद। कि ज़िल्लत के साथ इस क़दर माल अदा किया करें। भाग १० पृ० ९६।

यदि कोई पुरुष मुसलमान होने पर राज़ी न हो तो वह अपने धन में से प्रत्येक वर्ष मुसलमानी सरकार को जज़िया दिया करे। परन्तु इसी पर छुटकारा नहीं है। यदि प्रत्येक वर्ष कुछ कर स्वरूप धन देना ही पड़ा तो उतनी कठिनाई नहीं है। पर क़ुरान ने जो जज़िया कर देने का प्रकार बतलाया उससे अच्छा तो कर देने वाले की मृत्यु ही है। आयत के अन्तिम भाग में आया है कि जज़िया अपने हाथ से दिया करे और उस समय वह ज़लील रहे। देने के प्रकार को अबारम ने यों वर्णन किया है।

'खड़े होकर नज़राने की तरह वसूल करने वाले बैठे हुए को आदर करे। वआज़ ने कहा कि जहाँ लेने वाला बैठा है वहाँ इसको खींच ले जावें और वह ज़लील बना हुआ अदा करे। वआज़ ने कहा कि वह देता हो तब भी उससे कहा जावे कि अरे जज़िया जल्द दे और इब्न अबास से रवायत की जाती है कि ठुकराया जावे और ऐसे ही दूसरे कथन हैं।' पृ० ९६ का शेष पृष्ठ।

पाठको! आपने जज़िया देने के प्रकार को देखा। अब

स्वयं विचारें कि इससे बढ़ कर पाशविक अत्याचार और क्या हो सकता है। मुसलमानों के साथ युद्ध में मेल करना भी मानों अपने आपको पशु से नीचा बनाना है तथा अपने धार्मिक कृत्य से हाथ धो बैठना है। स्व० मौलवी सैयद् अमीर अली साहेब ने अपनी तफ़सीर में उक्त आयत के नीचे एक पत्र उद्धृत किया है जो दूसरे खलीफ़ा हज़रत उमर के साथ शाम देश के ईसाइयों से सुलह होने के अवसर पर अब्दुल रहमान बिन गनम ने ईसाइयों की ओर से लिखा था। इस पत्र को पढ़कर विचारशील पाठक इस्लामी स्पिरिट का अन्दाज़ा स्वयं कर सकते हैं।

पत्र हूब हू उद्धृत किया जाता है और कोष्ठ में अरबी तथा फ़ारसी शब्दों का अनुवाद अपनी ओर से दिया जाता है जिससे पाठकोंको समझने में कुछ कठिनाई न हो।

पत्र की नकल

बिसमिल्लाहर्रहमानर्रहीम—(आरम्भ दयालु तथा दयावन्त अल्लाहके नामसे)। यह खत फलां फलां शहर के नसारा (ईसाई) की तरफ़ से हज़रत अब्दुल्लाह उमर बिन खताब अमीरुल मौमेनीन को है कि जब आप हमारे यहां आये तो हमने आप से अपनी जान व माल व औलाद (सन्तान) व अहले मिल्लत (धर्मानुयायियों) के वास्ते अमान (शरण) मांगी और आपके वास्ते अपने ऊपर यह शर्त्त की कि हम अपने शहर या नवाह (आसपास) में कोई दैर या कलीसा या कुलाब या

समझा गाहिब (धर्ममन्दिर) जदीद (नूतन) नहीं ईजाद करेंगे। और जो इसमें से खराब हो जाय इसकी तजदीद अमारत (नई इमारत बनाने का काम) नहीं करेंगे और जो इसमें से खित्ता (टुकड़ा) मुसलमानी हो इसकी अहया (पुनर्जीवन) हम न करेंगे और रात या दिन में जिस वक्त कोई मुसलमान हमारे कलीसा (मन्दिर) में न उतरे। हम उसके माने (मना करने वाले) न होंगे और गुजरने वालों के लिये इसका दरवाज़ा वसीय (विस्तार) कर देंगे और जो मुसलमान हमारी तरफ़ से गुज़रेंगे तीन दिन तक उनको उतार कर दावत या ज़ेयाफ़त (निमन्त्रण) करेंगे और अपने कलीसा या घरों वगैरह में किसी जासूस को जगह न देंगे और मुसलमानों के लिये कोई ग़श (धोखा) पोशीदा गुप्त न करेंगे। और अपनी औलाद (सन्तान) को क़ुरान पढ़ावेंगे और शिर्क (अनेकदेववाद) को खुल्लमखुल्ला इज़हार (प्रकाश) न करेंगे और किसी को शिर्क की तरफ न बुलावेंगे और अपनी क़रावत (सम्बन्ध) वालों से किसी को इसलाम में दाखिल होने से मुमानिअत (निषेध) न करेंगे जब कि वह इसलाम में दाखिल होने का इरादा करें और मुसलमानों की तौक़ीर (सम्मान) करते रहेंगे और अगर हमारी मजलिस में बैठना चाहें तो इनकी तौक़ीर (सम्मान) के वास्ते खड़े हो जायेंगे और मुसलमान के लेबास में से किसी चीज़ से मोशाबिहत (समानता) न करेंगे न टोपी में न अमामा (पगड़ी) में, न नअलैन (जूते) में, और

न सर के बालों के बीच से मांग निकालने में और न इनके कलाम से गुफ्तगू करेंगे और न इनकी कुनियतों से अपनी कुनियत (सम्बन्ध) रक्खेंगे, और न ज़ीनों पर सवार होंगे, और न तलवारे हमायल करेंगे (लटकायेंगे) और न हथियारों में से कोई हथियार बनावेंगे, और न अपने साथ रक्खेंगे और न अरबी में अपनी अंगूठियों के नक़श करेंगे, और न शराब फरोख्त करेंगे, और हम शर्त करते हैं कि सरों को आगे से कुछ कतरावेंगे और जैसी हमारी पोशिश (पहिरावा) है ऐसी ही रक्खेंगे और कमर पर ज़ुन्नार (यज्ञोपवीत) बाँधेंगे और अपने कलीसों में न सलीब-बुलन्द (ऊंचा) करेंगे और न मुसलमानों की राहों व बाज़ारों में से किसी राह व बाज़ार पर अपनी किताबें ज़ाहिर करेंगे और अपने कनायस (मन्दिरों) में न कूस (शङ्ख) खफ़ी (धीमी) आवाज से बजावेंगे इससे ज्यादा आवाज़ से न बजावेंगे और मुसलमानों के हजूर (नज़दीक) में हम अपनी कनायस (मन्दिरों) में किसी चीज़ के पढ़ने से आवाज़ बुलन्द (ऊंची) न करेंगे और हम लोग शआनीह वो बअस न निकालेंगे और मुर्दों के साथ अपनी आवाजें बुलन्द न करेंगे और मुसलमानों की राहों में से किसी राह में हम आग जाहिर न करेंगे और न इन के बाज़ारों में पैसा करेंगे, अपने मुर्दों को इनके आगे न बढ़ावेंगे और जो मुसलमान के हिस्से में आ चुका उसको अपना ममलूक (अधीन) नहीं बनावेंगे और मुसलमानों के हक़ में भलाई चाहेंगे और इनके घरों में नहीं झांकेंगे ।"

अब्दुल रहमान-बिन-गन्नम ने कहा कि जब मैं मसौदा अहदनामा लेकर हज़रत उमर के पास आया तो आपने इसमें यह इबारत (लेख) और बढ़ाई "और हम किसी मुसलमान को न मारेंगे यह सब हमने अपने आप लोगों के वास्ते अपने उम्मत और अपनी मिल्लत (सम्प्रदाय) वालों पर शर्त किया और इन्हीं शर्तों पर हमने अपने हक़ में अमान लेना कबूल किया-। अगर हमने इन शर्तों में से भी तुम्हारे वास्ते कबूल करके हमने जिम्मामशरूत की किसी शर्त में खिलाफ़ किया तो हमारे वास्ते कुछ जिम्मा न होगा और आपको हमसे यह सब करना हलाल होगा जो आहल शकाक् व उनाद (शत्रुओं) से हलाल है। पृ० ९८

उपर्युक्त पत्र की शर्त्तों को पढ़ करके क्या इस्लामी स्पिरिट का अन्दाज़ा नहीं होता ! मुसलमान नहीं बनने पर इससे बढ़-कर और क्या अपमान सहन किया जा सकता है ?

अब के मुसलमानों की बातें तो न्यारी ही हैं, उनके लिये या तो मुसलमान होना या प्राण देना इन दो मार्गों के अति-रिक्त और कोई तीसरा मार्ग ही नहीं था सूरा तोबा की निम्नोक्त आयत से पाठक स्वयं पता लगा सकते हैं—

फ़इज़ा नसलिखुल अशहरुल हरोरोम कातिलुल मुशरेकीन हैस वजद तो मुहुम व खोज़ुहुम वह सोरुहुम वक़अदुलहुम कुल्ल मरसदिन फइन तावू व अक़ामुस्सलात व आतउज़्ज़कातक खल्लु सबीलहुम इन्नल्लाह गफ़ुरुर्रहीम।

अर्थात् फिर जब गुज़र जावें महीने पनाह के तो मारो मुशरिकों (देव पजकों) को जहाँ पाओ और पकड़ो और घेरो और बैठो हर जगह उनकी ताक पर, फिर अगर वे तोबा करें और खड़ी रक्खें नमाज़ और दिया करें जकात (दान) तो छोड़ो उनकी राह, अल्लाह है बख़शता मेहरबान।

इस आयत को चौथे खलीफा हज़रत अली ने तलवार कहा है इनका कथन है कि आँ हज़रत अर्थात् मुहम्मद साहेब चार तलवारों के साथ मबऊस हुये (अर्थात् पैगम्बर कर के भेजे गये) एक तलवार तो अरब के मुशरिकों के हक में अर्थात् उपर्युक्त आयत...(। देखो मवाहिबुर्रहिमान भाग १० पृ० ५७ ।) ......और मेरा गुमान है कि दूसरी तलवार अहले किताब के हक में थी......और तीसरी तलवार मोनाफ़िकों के हक़ में...... और चौथी तलवार बागियों के हक़ में...... ।

इस समय संसार में मुसलमानों का बल क्रमशः कम हो गया है। अतः जहादको सिद्धान्त रूप से भले ही मानें, परन्तु कार्य रूप में इसे परिणत करना टेढ़ी खीर हैं। दूसरे, इस समय संसार में ज्ञान विज्ञान का प्रचार है। अब वह जमाना नहीं रहा कि बलात्कार कर के किसी को अपने सम्प्रदाय का अनुयायी बनाया जाय वरन् जिस धर्म के प्रचार के लिए बलात्कार को साधन समझा जायगा संसार उसे घृणा की दृष्टि से देखेगा। यही कारण है कि इसलाम धर्म ने अपने आरम्भ काल से अब तक किसी जाति के हृदय को अपनी ओर नहीं खींचा। जिस

प्रकार गीता को पढ़ कर संसार के विज्ञ पुरुष लट्टू हो गये तथा उपनिषदों की शान्तिमयी वाणी का रसास्वादन करके प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता शोपेनहार ने भी मुक्त कण्ठ से कहा:—

"In the whloe world there is no Study so benificial and so elevating as that of the UPanishads. It has been the solace of my life, it will be solace of my death-"

अर्थात् "समस्त संसार में उपनिषदों के अध्ययन के सदृश उपयोगी और महत्व का और किसी प्रकार अध्ययन नहीं है, मेरे जीवन का यह सहारा रहा तथा मेरी मृत्यु का भी सहारा रहेगा।"

इतिहास से पता नहीं चलता कि कुरान ने भी किसी पर ऐसा प्रभाव जमाया हो, विज्ञ पुरुष इसके अण्डवण्ड सिद्धान्तों तथा बहुविवाह, मोताह आदि को देखकर इसे उच्चकोटि के ग्रन्थों में रखना भी नहीं चाहते। जहाद (अर्थात् धर्मप्रचार में बलात्कार) के सिद्धान्त ने तो शिक्षित जगत् का मन ही इससे फेर दिया है। अतः इस समय कतिपय मौलवी जो संसार में कुरान का प्रचार करना चाहते हैं इसे संसार में एक नये ही रूप में रखने की चेष्टा में हैं और जहाद जैसे अमानुषिक सिद्धान्त पर जिसकी आज्ञा कुरान में स्थान स्थान पर लिखी हुई है पोता फेरना चाहते हैं परन्तु स्मरण रहे कि इस लीपापोती के द्वारा सच्चाई को छिपाना असम्भव है। ऐसी चेष्टा करनेवाले मौलवियों में मौलवी मुहम्मद अली एम० ए० बी० एल० प्रेसी-

डेण्ट अहमदिया अन्जुमन इशायत इसलाम लाहौर का प्रधान नम्बर है, जिन्होंने अँग्रेज़ी भाषा में कुरान का अनुवाद तथा भाष्य लिखा है। चूंकि पाश्चात्य शिक्षित जगत में तथा भारत के अंग्रेज़ी शिक्षित पुरुषों में इसके प्रचार का उद्देश्य है इसलिये उन्होंने समग्र गड़बड़ सिद्धान्तों पर पानी फेरने की चेष्टा की है। देखिये जहाद पर आप क्या लिखते हैं।

...........Jihad is the using one's utmost power in Contending with an object of disapprobation. It is in a secondary that the word signifies fighting............The correct rendering is that jihad singnifies striving, or exerting oneself and there is nothing in the word to indicate that this striving is to be effected by sword, or by the tongue or by any other method————foot note No. 1037.

अर्थात्—अप्रिय वस्तु के विरोध में अपनी समग्र शक्ति के लगाने का नाम जहाद है...युद्ध करना इस (शब्द) का गौण अर्थ है—शुद्ध अनुवाद यह है कि जहाद का अर्थ चेष्टा करना तथा अपने आपको किसी काम में लगाना है। इस शब्द में ऐसा कुछ नहीं है जिससे यह जाना जाय कि यह चेष्टा तलवार, जिह्वा तथा और किसी प्रकार से सम्पादन किया जाय—देखो उनका कुरान-भाष्य फुट नोट स० १०७३)

यदि वास्तव में जहाद का यही तात्पर्य हो जैसा कि मौलवी साहेब का कथन है तथा मोहम्मद साहेब इसी प्रकार का जिहाद

करते रहे हों तथा उनके पश्चात् उनके चारों मित्रों ने भी अपनी खिलाफत के समय में जहाद का ऐसा ही भाव समझा हो तथा इसी प्रकार का जहाद करते रहे हों और इसके पश्चात् और खलीफाओं ने और मुसलमान बादशाहों ने भी ऐसा ही किया हो तो हमें मौलवी साहेब के साथ सहमत होने में कुछ आपत्ति नहीं है, परन्तु शोक से लिखना पड़ता है कि कुरान हदीस तथा इस्लामी इतिहास हमें मौलवी साहेब के विरुद्ध राय स्थिर करने के लिये बाध्य करते हैं। कुरान के कतिपय प्रमाण प्रथम उद्धृत किये जा चुके हैं हम एक और आयत लिखकर विचार के लिये प्रस्तुत करते हैं (देखो सूरा तोबा रकुअ १४)

"फ इज़ा नसलखल अशहरूल होरोरोमो फक़्तलुलमुशरे-कीन हैसो वजद्दुत्तमोमूहुम व खोज़ोहुम वह सोरूहुम वक़ओदू-लहुम कुल्ल मर्सदिन फइन ताबू व अक़ामुस्सलात, व आतुज़्ज़-कात फ खल्लुसबीलहुम इन्नल्लाहगफ़ूरुर्रहीम् ॥"

शाह रफीउद्दीन साहब इनका अनुवाद यों करते हैं—

"पस जब तमाम हो जावें महीने अमन के, मारो मुशरिकों को जहाँ पाओ उनको, और पकड़ो उनको और घेरो उनको और बैठो वास्ते उनके हर घात की जगह; पस अगर तोबा करें और क़ायम रक्खें नमाज को और दे ज़कात को, पस छोड़ दो राह उनकी तहकीक़ अल्लाह बख्शने वाला मेहरबान है।"

मौलवी साहब इस आयत का अंग्रेजी अनुवाद स्वयं इस प्रकार करते हैं:—

So when the Sacred months have passed away, then slay the idolotors, wherever you find them, and take them captives and besiege them and lie in wait for them in every ambush, then if they repent and keep up prayer and pay the poor rate leave their way free to them, Surely Allah is forgiving merciful.

मैं इस आयत पर विना किसी प्रकार की टिप्पणी चढ़ाये तथा स्वयं मौलवी साहब के अनुवाद को ठीक मानता हुआ विचारशील पाठकों से पूछता हूँ कि इस आयत में जो मूर्ति पूजकों के साथ जहाद करने की स्पष्ट आज्ञा है तथा उस जहाद का विस्तार भी वर्णित है यथा 'उन्हें वध करो उन्हें बन्दी बनाओ, उन्हें घेरो तथा उनके घात में बैठो' इत्यादि क्या यह कार्य्य विना तलवार वा और किसी प्रकार के हथियार के ही सम्पादन हो सकता है ? क्या कुरान की इस आयत का यही तात्पर्य है कि काफिरों को वध करो परन्तु किसी प्रकार के अस्त्र का व्यवहार न करो ?

हजरत की चार तलवारें

प्यारे पाठको ! यह वही प्रसिद्ध कुरानी आयत है जिसको चौथे खलीफा हज़रत अली ने तलवार कहा। उनका कथन है कि आं हजरत अर्थात् मुहम्मद साहब चार तलवारों के साथ मबउस हुये (अर्थात् पैग़म्बर बनाकर भेजे गये) जिसमें एक तलवार तो यही उपर्युक्त सूरा तोबा की आयत है...और मेरा

गुमान है कि दूसरी तलवार अहले किताब के हक़ में थी......
और तीसरी तलवार मोनाफ़िक़ों के हक़ में......और चौथी
तलवार वाग़ियों के हक़ में.........इत्यादि—(देखो तफ़सीर
जामेउलबेआन भाग १० पृ० ५७)

आश्चर्य है कि मौलवी साहब शिक्षित हो करके भी दुनिया
की आंखों में दिन दहाड़े धूल झोकना चाहते हैं। परन्तु क्या
करें उनका इसमें दोष ही क्या है कुरान की शिक्षा का परिणाम
है कि सत्य को येनकेन प्रकारेण छिपाने की चेष्टा की जाय।
अतः मौलवी साहब के किए जहाद शब्द के अर्थ से कुरान
सहमत नहीं है, और न हज़रत मुहम्मद साहब ही ऐसे भाव के
माननेवाले थे वरन् वे अल्लाह के पास से कुरआनी आयत
लेकर क्या आये थे मानों चमकती हुई तलवार लेकर आये थे
इसी लिये तो उन्होंने स्वयं अपने मुख से सगर्व कहा है कि—

"आमिर्तो अन अक़ातेलुन्नास हत्ता यक़ूलू लाइलाहइल्लि-
ल्लाह मोहम्मदुर्रसूलिल्लाह"

अर्थात् मुझे आज्ञा दे दी गई है कि मैं लोगों के साथ
तब तक क़ताल करूँ जब तक वे "लाइलाह इल्लिल्लाह मोहम-
म्मदुर्रसूलिल्लाह" (अर्थात् "अल्लाह के अतिरिक्त और कोई
पूज्यदेव नहीं है और मोहम्मद उसका पैग़म्बर है)" का कलमा
न पढ़ें अर्थात् जब तक वे मुसलमान न हो जाँ) जब मोह-
म्मद साहब ही ने जहाद किया अर्थात् इतर धर्मावलम्बियों पर
अस्त्र शस्त्र के द्वारा बलात्कार कर उन्हें मुसलमान बनाया

तो उनके पश्चात् खलीफ़ाओं के विषय में कहना ही क्या है, खूनी इतिहास पढ़ कर इनका पूरा जहाद देखें।

'जहाद' की विवेचना

हाँ, जहाद शब्द का जो अर्थ आपने अर्बी धातु के सहारे किया है उसके मानने में कोई आपत्ति नहीं, परन्तु प्रत्येक भाषा में शब्दों के अर्थ ठीक ठीक उनके धात्वर्थ ही नहीं होते वरन् कोषकार उनके वे अर्थ भी देते हैं जिन जिन भावों में वह शब्द उस भाषाभाषियों के बीच में प्रचलित हो गया है तथा शब्दों के पारिभाषिक अर्थ भी हुआ करते हैं। 'जहाद' धातु का अर्थ चेष्टा करना, परिश्रम करना, झगड़ना, तथा लगे लगे रहना आदिक है परन्तु कैसे कर्म चेष्टा करना तथा लगे रहने को अर्बी भाषा में 'जहाद' कहते हैं इसके लिये अरबी भाषा का कोष देखना चाहिये। देखिये कामूस जो अबी भाषा का प्रसिद्ध कोष है उसमें इसका अर्थ यह है—"अजिहिदह कताल वादुशमनान" अर्थात् लड़ाई करना तथा शत्रुओं के साथ युद्ध करना ऐसे ही ग़यासुल्लोग़ात में भी लिखा है "जिहाद—वा कुफ्फार कारज़ार करदन" अर्थात् जहाद का अर्थ है काफ़िरा के साथ युद्ध करना। मुन्तख़ेबुल्लोग़त् में भी यही अर्थ किया है। पारिभाषिक अर्थ भी कोषोक्त अर्थ ही के अनुसार किये जाते हैं। "जहाद" शब्द इस्लाम धर्म में एक पारिभाषिक शब्द है इसी कारण इस्लामी फ़ेकहकी किताबों (स्मृतियों वा धर्म-शास्त्रों) में ज़िहाद पर एक अध्याय सविस्तर अलग ही लिखा जाता है

(देखो फतवये आलमगीरी तथा शरह वकाया आदि ।) हदीसकी पुस्तकों में भी एक अध्याय सविस्तर 'जहाद' का अवश्य रहता है जिस अध्याय का नाम "किताबुलजहाद" रहता है। इस बात की पुष्टि में किसी हदीस की पुस्तक का उठा कर देखिये स्पष्ट हो जायगा। और तनिक कृपा करके किसी हदीस की "किताबुलजहाद" की समस्त हदीसों को पढ़ कर देखिये फिर सीने पर हाथ रख कर कहिये कि क्या इतर धर्मावलम्बी मुसलमानों पर दीन के कारण तलवार चलाने की बात का कलङ्क लगाते हैं अथवा वास्तव में तलवार ही दीन इस्लाम की भित्ति है तथा स्वर्ग द्वार का उद्घाटक है। आइये विचार कीजिये हाथ कङ्गन को आरसी क्या है ? मैं स्वयं नहीं चाहता कि किसी बात का उल्लेख तो कर दूँ और उसके लिये कोई प्रमाण न दूँ। मौलवी साहब! कहाँ तक आप कुरान, हदीस तथा फेकह आदि पर हड़ताल फेर कर इस्लाम के कलेवर बदलने में सफलता प्राप्त करेंगे ? किसी कवि ने क्या अच्छा कहा है:—

"तन शुदह जुमला दाग़ दाग़ पुम्बा कुजा कुजानेही"

अर्थात् "समस्त शरीर तो दाग़दार हो गया है रुई का फाहा कहाँ रक्खा जाय।"

हाँ यदि वास्तव में जहाद के सिद्धान्त को उसूले इस्लाम से निकाल दिया जाय तथा कुरान तथा हदीसों की आज्ञाओं को अमानुषिक घोषित कर दिया जाय तो वास्तव में इस्लाम का

सुधार हो और मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि आर्यसमाजी विशेषकर आपकी इस कार्य में सहायता करेंगे।

अच्छा अब देखिये जहाद का पारिभाषिक अर्थ क्या है तथा उसके विषय में क्या क्या आज्ञाएं हैं—

किताबुल-ज़हाद और 'जहाद' कारी हज़रत

देखिये मौलवी वहीदुज्ज़मान साहब शरह वक़ाया के उर्दू अनुवाद नूरुलहेदाया दूसरा खण्ड किताबुलजहाद के आरम्भ ही में लिखते हैं:—

"जहाद" यानी काफिरा से दीन (धर्म) के वास्ते लड़ना इब्तदा में (आरम्भ में) फर्ज किफ़ाया है, 'याने मुसलमानों को चाहिये कि शुरू लड़ाई को खुद करें।"

फ़र्ज़ किफ़ाया

इसलामी धर्मशास्त्र में एक पारिभाषिक शब्द है "फर्ज-किफ़ाया।" 'फर्ज' ऐसे कर्म को कहते हैं जिसका करना मुसलमानों के लिये आवश्यक है अर्थात् नित्य कर्म जैसे नमाज पढ़ना ज़कात (दानदेना) आदि। 'फर्ज़ किफ़ाया' ऐसे आवश्यक नित्य कर्म को कहते हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिये। परन्तु यदि एक जमायत वा जत्थे में से कई मनुष्यों ने भी उस कर्म को कर लिया तो उस जत्थे के मत्थे पर और जिम्मेवारी न रही मानो सबों ने किया ऐसा समझना होगा।

उपर्युक्त लक्षण से इसलाम के अनुसार प्रत्येक मुसलमान

के लिये काफ़िरों का वध करना 'नित्य कर्म' है, कई घवड़ाये हुए मौलवी लोग इस विषय में यह कहते हैं कि हमारे लिये युद्ध करने का तो विधान तब ही है जब शत्रु हम पर आक्रमण करें। अपनी रक्षा में लड़ना कोई अत्याचार नहीं है। बात ठीक है, परन्तु 'जहाद' नामक युद्ध का उद्देश्य ही कुछ और है। अर्थात् काफ़िरों को दीन इसलाम स्वीकार करने को कहना और यदि न करें तो उन्हें वध करना। स्वयं हज़रत मुहम्मद साहब अपने जीवन में किसी ऐसे युद्ध में सम्मिलित नहीं हुए जिसमें इतर धर्मावलम्बियों को दीन इसलाम स्वीकार करने के लिये नहीं कहा गया है। (देखिये किताब-नूरूल-हेदाय, । दूसरा खण्ड । किताबुलजिहाद पृ० १०६—१०७)

"पर अगर हम फिरक़ये (सम्प्रदाय) इसलाम काफ़िरों को मोहासिरा करले (घेरलें) तो अव्वल (प्रथम) उनसे मुसलमान हो जाने की दरख्वास्त करें। इस वास्ते कि रवायत (वर्णन) की अब्दुल रज़ाक़ ने इब्न-उब्बसे कि नहीं लड़ाई की रसूलिल्लाह सल्लल्लाहो अलैहेव आल ही व समद (अल्लाह का आशीर्वाद हो उन पर और उनकी सन्तति पर और शांति) ने यहां तक कि बुलाया न हो उनको तरफ़ इसलाम और इख़-राज, किया (निकाला) उसका हाकिम (एक हदीसवेत्ता का नाम) न और सही (ठीक) किया उसको। तो अगर लड़ाई करेंगे क़बूल (पूर्व) बुलाने तरफ़ इसलाम के तो गुनहगार होंगे अगर वह मुसलमान होना मान लें तो बेहतर है इस

वास्ते कि मतलब (उद्देश्य) हासिल (प्राप्त) हो गया तो उनके कताल से बाज़ रहे और फरमाया रसूललिल्लाह सल्ल-ल्लाहो आलेहे वासल अमने हुक्म किया गया मैं कि मोक़ातिला करूँ लोगां से यहां तक कि कहें वे नहीं है कोई मअबूद (उपास्य) सिवाय अल्लाह के। रवायत (वर्णन) किया इसका बुखारी वो मुसलिम ने इब्ने उमर से (विदित हो कि इसलाम धर्म में क़ुरान के पश्चात् बुखारी और मुसलिम ही की हदीस की पुस्तकें प्रमाण ग्रन्थ है)"

इसमें कोष्ठक के हिन्दी के पर्यायवाचक शब्द मेरी ओर से हैं।

उपर्युक्त लेख से स्पष्ट है कि 'जहाद नामक युद्ध कोई राज-नैतिक युद्ध नहीं है। अभी जो गत यूरोपीय युद्ध में तुर्की सम्मि-लित था तो क्या उसने अपने शत्रुओं में यह घोषणा की थी कि तुम मुसलमान हो जाओ कदापि नहीं। राजनैतिक युद्ध का उद्देश्य धर्म का प्रचार करना नहीं होता। हज़रत मोहम्मद साहब ने जितने युद्ध किये हैं सबका एक ही उद्देश्य था कि बलात लोगों को मुसलमान बनाया जाय और इस प्रकार के युद्ध करने की आज्ञा को कुछ अपने तथा अपने मित्रों तक ही परि-मित नहीं रक्खा वरन् प्रलय के दिवस तक मुसलमानों के लिये फ़र्ज़ बनाने की आज्ञा दे गये। परन्तु इस समय मुसलमान विचारे लाचार हैं, करें तो क्या करें? देखिये उक्त पुस्तक उक्त स्थान में:—

"और फरमाया रसूलिल्लाह सल्लल्लाहो अलैहे व सल्लमने जहाद रहने वाला है उस ज़माने से कि उठाया मुझको अल्ला तआलाने (अर्थात् पैगम्बर करके भेजा गया) यहां तक कि लड़ेगा आखिरी उम्मत (अनुयायी) मेरी*दज्जालसे रवायत की आवूदाऊदन उन्स से ।"

इससे बढ़कर जहाद के विषय में और क्या कड़ी आज्ञा हो सकती है । चूंकि जहाद का फ़र्ज़ होना हम सिद्ध कर चुके, अब इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि जिन कर्मों को कोई शास्त्रकार नित्यकर्म वा फ़र्ज़ बतलाता है तो उसके न करने पर वह मनुष्य पापी समझा जाता है इसी लिये शरह वकाया में लिखा है कि:—

हदीस कुरान में जहाद की आज्ञा

"अगर कोई जहाद न करेगा तो गुनाहगार (पापी) होगा।" (नुरुल हेदाया भाग २ पृ० १७६) मिशकातुलमसाबीह किताबुल जहाद प्रथम अध्याय में एक हदीस (वार्त्ता) इस प्रकार है।

"अन अबी होरैरते क़ाल, क़ाल रसूलिल्लाहे सल्लल्लाहो अलैहे वसल्लम मनमात वलम यग़ज वलम यह दस बे नफसेहीमात अ़ला शोअबतिन मिन नफ़क़ ।"

---

*दज्जाल—मुसलमानों के सिद्धांत के अनुसार प्रलय के समय दज्जाल नामक एक आदमी प्रगट होगा जो कानी गधी पर चढ़ कर आवेगा और मुसलमानों से लड़ेगा ।

अर्थात् अबी हौरैरासे कथित है उसने कहा कि रसूलिल्लाहे सल्लाहो अलेहे वसल्लमने कहा है कि जो कोई मर जावे और जहाद न करे और न मन ही में इसके करनें का संकल्प करे तो उसकी मृत्यु (इस्लाम के) विरोध में हुई।

इस हदीस के पढ़ने से सन्देह नहीं रहता कि मुहम्मद साहब अपने अनुयायियों को जहाद करने के लिये कहाँ तक ताकीद कर गये हैं पर वे इतनी कड़ी ताकीद क्यों नहीं करते जब स्वयं कुरान में ही इस प्रकार की आज्ञा है यथाः—

"या ऐय्यो हन्नबीओ हर्रेसिलमोमेनीन अलल केताले ईयकुम्मिन कुम इशरून साबेरून यगलेबू मेअतैन वाईयकुम्मिन कुम्मेअतुन यगलेबू अलफम्मिनल्लज़ीन कफरू बे अन्नहुम कौमुल्लायफ़्क़हून। सूरा अनफ़ाल रकुअ ६।

अर्थात् हे नबी, मुसलमानों को लड़ाई के लिये उसकाओ और यदि तुममें बीस सन्तोष करने वाले हों तो दो सौ पर विजय प्राप्त करें, और यदि तुममें से सौ हों तो एक सहस्र पर विजय प्राप्त करें उन लोगों से जो काफिर हुए इस कारण कि वे ऐसी जाति हैं जो नहीं समझते।"

इस कुरानी आयत ने मुसलमानों को काफिरों से लड़ने के लिते कैसा बढ़िया प्रलोभन दिया कि तुम बीस मनुष्य दो सौ काफिरों पर विजय प्राप्त करो अर्थात् एक मुसलमान काफिरों के साथ लड़ाई में दस के बराबर है। बेचारे भोले भाले अरबवासी बातों के चक्कर में आ गये और काफिरों के साथ युद्ध

करने को निकल खड़े हुए। विश्वास तो था कि हममें से प्रत्येक दस के बराबर हैं पर मामला कुछ उलटा ही हुआ। काफ़िरों के मोकाबिले में पीठ दिखलानी पड़ी और मैदान छोड़ कर घर का रास्ता लेने पर बाधित हुये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस घटना से मुसलमानों का विश्वास तो डावाँडोल होगा और उपर्युक्त आयत को मन गढ़न्त प्रलोभन समझ लिया होगा और युद्ध में जाने से हिचकिचाते होंगे परन्तु हज़रत मुहम्मद कुछ ऐसे वैसे आदमी नहीं थे। उन्होंने भी देख लिया कि बात तो नहीं बनी लोग फ़रण्ट होने लगे, किसी प्रकार से उन्हें फिर एकत्रित करना चाहिये। पर इस समय क्या हथकण्डा करते? अल्लाह की ओर से आयतों के उतरने का सिलसिला जारी था। कभी ऐसी आयतें भी उतरती थी जिसे पश्चात् की उतरी हुई आयत मनसूख वा रद्द कर देती थीं। अब उपर्युक्त आयत से काम बनते नहीं देखा तो तत्क्षण इस आयत को मनसूख (रद्द) कर एक और आयत अल्लाह के यहाँ से उतार लाये। शाह वली उल्लाह साहब कुरान के अनुवाद में इस आयत पर यों टिप्पणी चढ़ाते हैं:—

"के चूं. ईं आयत नाज़िलशुद वाजिब गश्त सबात वादह चन्दान कुफ़्फ़ार बाद अज़ाँ मनसूख़गश्त बवजूबे सबात मोक़ाबलये दो चन्दान।"

अर्थात् जब यह आयत उतरी तो दस गुने काफ़िरों के साथ डट जाना वाजिब था इसके पश्चात् यह आयत मनसूख

(रद्) हो गई दुगने के मुकाबले में ठहरने के साथ इस आयत को रद् करनेवाली आयत ठीक इस आयत के नीचे है। देखिये:—

"अलआन खफ्फ़फ़ अल्ला हो अनकुम व अलेम अन्न फ़ी कुम ज़अफ़न फ़इंयकुम्मिन कुम्मिन कुम्मे अतुन सावेरतूं यग़-लेबू मेअरैन वाईयकुम्मिनकुम अल्फुं य्यग़लेबू अलफैन बेइज़-निल्लाहे वल्लाहे मअस्सावेरान।"

अर्थात् अब अल्लाह ने तुमसे कम कर दिया और जान लिया कि तुम में दुर्बलता है (विदित होता है कि पहिली आयत उतारते समय अल्लाह को इस बात का ज्ञान नहीं था) अतः यदि तुममें से सौ सन्तोष करने वाले हों तो दो सौ पर विजय प्राप्त करेंगे और यदि तुम में से १ सहस्र हों तो दो सहस्र पर विजय प्राप्त करेंगे अल्लाह की आज्ञा से। और अल्लाह सन्तोप करने वालों के साथ है।

(इसमें कोष्ठ का वाक्य मेरी ओर से है।)

क्या इन आयतों के पाठ से स्पष्टतया विदित नहीं होता कि काफ़िरों के साथ युद्ध करने के लिये हजरत मुहम्मद ने कैसे कैसे प्रलोभनों से अपने अनुयायियों को एकत्रित किया।

मौलवी मुहम्मद अली साहब लिखते हैं कि "इस शब्द में ऐसा कुछ नहीं हैं जिससे जाना जाय कि यह चेष्टा तलवार जिह्वा तथा और किसी प्रकार के साधन से सम्पादन की जाय।"

इस चेष्टा का तलवार से सम्पादन किया जाय या नहीं इस

पर हम ऊपर लिख चुके हैं। हाँ, यदि आप इस बात पर आग्रह करें कि काफ़िरों के साथ लड़ना उन्हें वध करना तथा बलात्कार मुसलमान बनाना आदि तो ठीक है परन्तु इसके लिये तलवार का उपयोग करना कहाँ लिखा है? तलवार शब्द उन आयतों की हदीसों में विद्यमान नहीं तो लीजिये हम आपकी खातिर इस आशय की एक हदीस भी उद्धृत किये देते हैं। देखिये।

किताब "सही जहाद" में हथियारों का प्रयोग

स्वर्ग तलवारों की छाया के नीचे है

(किताब सही मुसलिम किताबुल जहाद तथा मिशकात किताबुल जहाद अध्याय १)

"अन अबी मूसा क़ाल क़ाल रसूलिल्लाहे सल्लल्लाहो अलैह वसल्लम इन्न अबवाबुल जन्नते तहत ज़लालिस्सोयूफ़" इत्यादि।

अर्थात् "अबी मूसा से कथित है कि उसने कहा कि रसूलिल्लाहे सल्लल्लाहो अलैह वसल्लमने कहा कि स्वर्ग का द्वार तलवारों की छाया के नीचे है।" (अर्थात् स्वर्ग के द्वार में प्रवेश करने का साधन तलवार का व्यवहार है।

इसी प्रकार उक्त पुस्तकों के किताबुलजहाद बाब अअदादे आ लतिल जहाद (जहाद के हथियारों की संख्या के अध्याय) में एक हदीस सोलाहिज़ा हो:—

"अन अक़बते बिन आमिरे क़ाल समतो रसूलिल्ला हो

सल्लल्लाहो अलेहेवसल्लम व होव अलल मिम्बरे यक़ूलो वायद्दु-लहुम मसतवअतुम मिन क़ुव्वतिन अलाइन्नक़ु व्वतिर्रमा अला-इन्नलक़ुव्वतिर्रमा अलाइन्नलक़ु व्वतिर्रमा"।

अर्थात् आमिरेके अक़बासे कथित है । उसने कहा मैंने मिम्बर पर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलेहे व सल्लमको यह कहते हुए सुना कि "काफिरों के युद्ध के लिये जितना हो सके अपनी शक्तियों और बल को प्रस्तुत करो चेत रक्खो कि तीर चलाना ही शक्ति है, चेतो, कि तीर चलाना ही शक्ति है, चेतो, कि तीर चलाना ही शक्ति है,"

तीन बार इस वाक्य के दुहराने का उद्देश तीर धारण करने के लिये बड़ी तक़ीद है । हम और कितने हथियारों को गिनावें। इस समस्त अध्याय को पढ़ जाइये स्वयं पता लग जायगा कि जहाद बिना अस्त्र शस्त्र के होता है अथवा नाना प्रकार के हथि-यारों का प्रयोग करना इसमें आवश्यक है । मौलवी साहब अब समझ गये होंगे कि जहाद शब्द में तलवार व्यवहार करने का अर्थ कहां से आ गया ।

जहाद का साधन गालियां

तलवार के अतिरिक्त जहाद का दूसरा साधन 'जिह्वा' है इसे भी मौलवी साहब अस्वीकार करते हैं। यदि मौलवी साहब के कथनानुसार दीन में चेष्टा करने ही का नाम जहाद है तो जिह्वा को इस का एक साधन मानने में अपत्ति ही क्या है? जिह्वा का काम शब्दोच्चारण करना, बोलना आदि है। यदि

इसका प्रयोग न किया जाय तो फिर दीन का काम ही होना असम्भव है। नमाज़ पढ़ने में भी जिह्वा का प्रयोग किया जाता है तथा क़ुरान के प्रचार करने में भी जिह्वा प्रधान साधन है फिर इसको साधन मानने में किस बात का भय है:—

हां, जहां, जिह्वा से भली बातों का उच्चारण करते हैं तथा धर्मोपदेश आदि का काम भी करते हैं वहां जिह्वा के द्वारा लोगों को गाली भी दे सकते हैं। विदित होता है कि जिह्वा को जहाद में व्यवहार न किया जाय इस कथन का यही उद्देश्य होगा कि किसी को गाली आदि न दी जाय। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह बहुत ही उत्तम आदर्श है कि किसी की निन्दा न की जाय और किसी को तथा किसी के उपास्य देव को गाली आदि न दी जाय। परन्तु जैसे जहाद में तलवार का प्रहार करना एक मुख्य साधन है वैसे ही किसी को तथा किसी के उपास्य देव को गाली देना भी जहाद का एक प्रधान अंग है। देखिये किताब मिशकातुल मसाबीह किताबुल जहाद अध्यायः-

"व अन अनिसन अनिन्नबीये सल्लल्लाहो अलेहे वसल्लम क़ाल जाहिदुल मुशरेकीन बेअमवालेकुम वअनफ़ोसे कुम वल-सनतेकुम रवाहो अबूदाऊद वनसाई वद्दारमी"।

अर्थात "उससे कथित है नबी सल्लल्लाहो अलेहे वसल्लमने कहा कि मूर्तिपूजकों के साथ, जहाद करो। अपने धन के साथ अपने जीवन के साथ तथा अपनी जिह्वाओं के साथ। वर्णन किया इसको अबूदाऊद, नसाई और दारमीने।"

इस हदीस का भाष्य मौलाना अब्दुल हक़ साहब मोहद्दिसे देहलवी अपनी पुस्तक अशअतुल्लमआत में इस प्रकार करते हैं:-

"जहाद कुनेद काफ़िरान रा बमालहाय खुदके सर्फ़ अमवाल कुनेद दरां व बजाते हाय खुदके खुदरा फ़िदा कुनेद दरां व कुश्ता शवेद व खिस्तागर्देद व बज़बान हाय खुद व दुशनाम देहेद बुतानपशान रा व दीन बातिल पशान रा व दुआकुनेद बर पशान व खुज़लान व हज़ीमत व बतरसानेद पशान रा व क़त्ल व बन्द व मानिन्द आं व दोआ कुनेद बर मुसलमान रा व मुस्र व ग़नीमत व बरग़लानेद मरदान व दिलावरान रा बर जहाद।"

अर्थात "काफ़िरों के साथ जहाद करो (अपने मालों के साथ अर्थात उसमें अपने धन का व्यय करो।" (अपने जीवन के साथ।) अपने को उसमें न्योछावर कर दो। अर्थात् ज़ख्मी बनो तथा मार डाले जाओ।) और अपनी जिह्वाओं के साथ) "अर्थात् इनकी मूर्तियों को गाली दो और इनके मिथ्या धर्म को गाली दो तथा इनके अपमानित और पराजित होने की प्रार्थना करो तथा इनको प्राण हनन, बन्दीकरण तथा ऐसे ही और बातों से धमकाओ और मुसल मानों के लिये प्रार्थना करो कि वे विजय प्राप्त करें तथा लूट का माल उन्हें मिले और मर्दों और वीरों को जहाद के लिये बरग़लाओ"

अब आपने समझ लिया होगा कि जहाद में जिह्वा के व्यवहार करने का क्या उद्देश्य रहा। मौलवी साहब खाहमखा सत्य को छिपाना चाहते हैं और जगत को अन्धकार में रखने की चेष्टा करते हैं।

अब इसमें कोई सन्देह विज्ञ पाठकों के हृदयों में नहीं रहा होगा कि जहाद (अर्थात् धर्म प्रचार में बलात्कार) में तलवार आदि अस्त्र शस्त्रों का उपयोग तथा जिह्वा के द्वारा काफिरों की की मूर्तियों आदि को गाली प्रदान करना कुरान और हदीस के अनुकूल है और स्वयं मुहम्मद साहब का जीवन इसका स्पष्ट प्रमाण है। इस कलङ्क के टीके को मिटाने की आजकल जो चेष्टायें मौलवियों की ओर से हो रही है इससे प्रतीत होता है कि भारतवर्ष मेंरहने तथा शिक्षित पुरुषों के सत्सङ्ग आदि से शिक्षित मुसलमान भी समझने लग गये हैं कि जहाद आदि के विषय में जो कुरान और हदीस में वर्णन है वह सभ्य मनुष्य की बुद्धि के सर्वथा विपरीत है। परन्तु एक ओर बुद्धि की प्रेरणा दूसरी ओर इस्लामी धर्म के संस्कार! करें तो क्या करें? बुद्धि की बात सुनने से इस्लाम से हाथ धोना पड़ता है तथा इस्लाम के मानने से बुद्धि से युद्ध करना पड़ता है। बड़ी विकट समस्या है। अब वह समय नहीं रहा कि मौलाना रूमी से सूफी दीन-दार मुसलमानों के सदृश बुद्धि को यह कह कर कोसें कि:—

अव्वल आँकस के क़यासकर्हाँ नमूद।
निज्द अनवारे खुदा इबलीसबूद॥

अर्थात् जिस किसी ने सबसे प्रथम बुद्धि से काम लिया वह ईश्वर के प्रकाश के निकट शैतान था।

जिससे स्पष्ट है कि बुद्धि को धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं, बुद्धि से विचार करने का काम शैतान का है।

संसार में अब बुद्धि की प्रधानता है, ऊटपटांग बातों को मानने का समय नहीं रहा, अतः जिसमें इस्लाम भी बाकी रहे और बुद्धि की दोहाई भी दी जाय इसके लिये हमारे नवीन शिक्षित मुसलमान भाइयों ने ऊटपटांग इस्लामी सिद्धान्तों पर पोचारा फेरने के लिये यह युक्ति निकाली है कि शब्दों और वाक्यों के अर्थ बदल दिये जायें और हदीस आदि पुस्तकों के वाक्यों के अर्थ बदलने में कृतकार्य्यता प्राप्त न हो तो उसके विषय में कह दिया जाय कि हदीस अप्रमाणिक है। आर्य्यसमाज की स्थापना के पश्चात् से कुरान पर जितने भाष्य लिखे गये हैं प्रायः सब में यह बात झलकती है। हम आर्यसमाजियों को इस बात से बहुत आनन्द है कि मुसलमान भाई शनैः शनैः ऊटपटांग सिद्धान्तों का मानना छोड़ते जायें परन्तु हृदय की शुद्धता के साथ साथ, परन्तु सत्य को छिपा कर वा अर्थ की फेरा फेरी से कुछ का कुछ प्रतिपादन करना शिष्टों का आचार नहीं। सत्य को प्रकट करना हमारा कर्त्तव्य है। इस आदर्श को सामने रखकर ही हमने मुसलमान भाइयों की लीपापोती को मिथ्या सिद्ध करने के लिये उनके माननीय धर्मग्रन्थों के इतने प्रमाण उद्धृत किये जिससे विज्ञ पुरुषों को असल बात का पता लगजाय। मौलवी मुहम्मद अली साहेब ने तो अपने कुरान का इङ्गलिश भाष्य लिखकर मन में समझ लिया होगा कि इसे युक्तियुक्त सिद्ध करने में बड़ी सफलता प्राप्त हुई। परन्तु यह ध्यान नहीं दिया कि दुनिया अन्धी नहीं है ऐसे समय में सत्य को छिपाना ही टेढ़ी खीर है।

अब हम मूल लेख की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। प्रसङ्ग वश मौलवियों की वृथा चेष्टा को आप के समक्ष रख दिया जिसके द्वारा विचार करने में आपको सुगमता हो।

इस विषय पर क्रम से प्रकाश डालने के लिये उचित समझता हूं कि क़ुरान और हदीस आदि मूल इसलामी ग्रन्थों में जो आज्ञायें या विधियां लिखित हैं उन्हें संक्षेप से दर्शाकर क्रमशः ऐतिहासिक घटनाओं को आपके सामने रक्खूं और लेखशैली में जो प्रमाण आदि उद्धृत करूंगा वह मुसलमान विद्वानों ही के लिखे ग्रन्थों से करूंगा। यथावसर इतर विद्वानों के लेखों से भी पुष्टि की जायगी।

क़ुरान की कतिपय आज्ञाएँ उद्धृत की जा चुकी हैं और कितनी ही और आयतों को उद्धृत कर उस पर प्रकाश डालता हूं—

सूरये अनफ़ाल ५ रुकुअ में है—

"क़ुल लिल्लज़ीन कफ़रू इन यन्तहू युग़फर लहुमूमा क़द सलफ व इंय्यऊदू फ़क़द मज़त् सुन्नतुल औव्वलीना व क़ातेलूहुम हत्ता ला तकून फ़ितनतों व्व यकूनद्दीनो कुल्लोहू फ़ इनिन्तहौफ़ इन्नल्लाह बेमा यामलून बसीर। व इन तवल्लौ फ़आलमू अन्नल्लाह मौला कुम नेमल मौला व नेमन्नसीर।"

मौलवीमुहम्मद अली साहब ने इन आयतों का जो इङ्गलिश अनुवाद किया है उसमें बहुत खींचातानी से काम लिया गया है अङ्गरेजी जानने वाले पाठकों को उनके अनुवाद के पढ़ने मात्र से विदित हो जायगा।

उनका अनुवाद इस प्रकार है:—

"Say to those who disbelieve if they desist; that which is past shall be forgiven to them; and if they return, then what happened to the ancients has already passed.

And fight with them until there is no more persecution and religion should be only for, Allah, इत्यादि मौलवी मुहम्मद अली साहब तो यह अनुवाद करके पार उतर गये कि:—

"Fight with them untill there is no more persecution and religion should be only for Allah

और आयत के असली बात के तात्पर्य्य को उलटा कर दिया। "फितना" (फ़साद) शब्द का अंग्रेजी अनुवाद (Persecution) करके धारा ही उलटी बहा दी है। सुनिये फ़ितना का अर्थ इब्न अब्बास तथा अन्यान्य प्राचीन उलमा (विद्वानों) के अनुसार शिर्क (मूर्त्तिपूजा) है (देखो महाहिबुर्रहमान खण्ड ९ पृ० २३८) अर्थात् उन काफ़िरों से तब तक लड़ो जब तक मूर्त्तिपूजा का अंत न हो जावे—"और हो जावे सब हुक्म अल्लाह का" भाष्य में सय्यद अमीर अली ने इब्न अब्बास आदि का अनुकरण करते हुए यह लिखा है कि अल्लाह का सब धर्म हो जावे और किसी मूर्त्ति आदि की पूजा शेष न रहे। अतः अब आयत का अर्थ स्पष्टतया यह है कि 'हे मुसलमानो! तुम काफ़िरों से तबतक लड़ाई जारी रक्खो जब तक कि अल्लाह

का धर्म अर्थात् इसलाम का सर्वत्र प्रचार न हो जावे और मूर्त्ति आदि की पूजा संसार से उठ न जाय"। इस बात को आर्यसमाजी भी मानते हैं कि ईश्वर की पूजा समस्त संसार में स्थापन करना चाहिये तथा ईश्वर के अतिरिक्त मूर्त्ति आदि की पूजा उठाने का प्रयत्न किया जावे परन्तु उसके लिये प्रेम पूर्वक प्रचार करने की आवश्यकता है। लोगों पर किसी प्रकार बलात्कार करना व तलवार आदि के भय से उन्हें अपना धर्म स्वीकृत करने के कथनानुसार यह भी स्वीकार कर लें कि मुसलमानों को उन्हीं से लड़ने की आज्ञा दी गई जो इनसे शत्रुता करें तो इससे सिद्ध है यदि शत्रुता करने से बाज़ आवें तो लड़ाई करना उचित नहीं फिर, जो बैज़ावी भाष्यकार ने यह कहा कि उनका मुसलमान बनना आवश्यक है क्या इससे स्पष्टतया सिद्ध नहा होता कि युद्ध का उद्देश्य कुछ और ही है! शत्रुता के त्याग करने ही से कुछ नहीं बनता, परन्तु काफिरों पर शर्त लगाया गया कि उनका मुसलमान बनना आवश्यक है। इसी को धर्मप्रचार में बलात्कार वा जहाद कहते हैं। जिसका विस्तार उपर्युक्त आयतों के स्पष्टीकरण से ज्ञात हो जायगा। और यह जो कहा गया कि "माफ़ हो उनको जो हो चुका" इस पद से पता नहीं चलता कि उनके अपराध को कौन माफ करेगा। पैगम्बर साहब स्वयं माफ करेंगे या अल्लाह मियां? यह प्रश्न कई भाष्यकारों ने उठाया है। इस पर भाष्यकार बैज़ावी का कथन है कि आज कल जो कुरान में है "इन यज़ी-

नहू युगफ़र लहुम" जिसका अनुवाद उपर्युक्त वाक्य है यह वाक्य पहले के कुरान में इस प्रकार नहीं था अर्थात् मोहम्मद साहब से जो आयत उतरी थी वह इस प्रकार थीः—

"इन तन्तहू यग फ़र लकुम जिसका अनुवाद है कि (ऐ काफिरो यदि बाज़ आओ तो (अल्लाह) तुम्हारा अपराध क्षमा करेगा ।"

पता नहीं चलता कि प्रचलित कुरान में जो आँ हज़रत उसमान का संग्रह किया है उपर्युक्त पाठ को किसने किस उद्देश्य से बदल दिया ।

आयत में जो यह कहा गया है किः—लड़ते रहो उनसे जब तक न रहे फ़साद, और Surely Allah sees what they do And if they turn back then know that Allah is your Patron excellent is the Patron and most excellent the helper.

मौलवी सय्यद अमीर अलीने यह उर्दू अनुवाद किया हैः—

"तू कह दे काफिरों को अगर बाज़ आवें, तो माफ़ हो उनको जो हो चुका, और अगर फिर वही करेंगे तो हो चुकी है रोशन अगलोंकी । और लड़ते रहो उनसे जब तक न रहे फ़साद, और हो जावे सब हुक्म अल्लाह का तो फिर अगर वह बाज़ आवें तो अल्लाह उनका काम देखता है, और अगर वे न मानें तो जान लो कि अल्लाह है हिमायती तुम्हारा, क्या खूब हिमायती है और क्या खूब मददगार ।"

आयत के आरम्भ में कहा गया है कि अगर काफिर बाज आयें तो उनके अपराध क्षमा होंगे परन्तु यह नहीं बतलाया गया कि किस कर्म्म से बाज आवें तथा किस प्रकार से बाज़ आवें इस पर भाष्यकार बैज़ावी का कथन है 'कि पैग़म्बर के साथ शत्रुता करने से बाज़ आवें' वास्तव में बात बहुत ठीक है कि यदि शत्रुता करने से बाज़ आवें तो उनके अपराध क्षमा हो जायँ, और यह नीति की बात है। इस पर किसी को शङ्का हो क्या हो सकती है कि यदि शत्रु शत्रुता करने से बाज़ आवें तो उसके अपराध क्षमा किये जावें परन्तु आगे चल कर बैज़ावी साहब का कथन है कि वह भी इस तरह कि इस्लाम में दाखिल होकर बाज़ आवें" अर्थात् उनका मुसलमान बनना आवश्यक है। यदि हम आजकल के कतिपय मौलवियों के लिये वाक्य करना मनुष्यत्व के नितान्त विरुद्ध है और कुरान ने प्रचार में बलात्कार करने की स्पष्ट आज्ञा दी है। 'इस आयत के अर्थ को पलट कर जो लोग यह दिखलाने की चेष्टा करते हैं कि इसमें अपने शत्रुओं से लड़ने की आज्ञा दी गई है, जब तक कि उनके फिसाद का नाश न हो जाय, यह धर्म के लिये युद्ध नहीं परन्तु राजा जैसे दूसरे के राज्य आदि पर चढ़ाई कर युद्ध करते हैं इत्यादि, वे इस्लाम धर्म के तत्व से पूरे अनभिज्ञ हैं मैंने जो आयत के अर्थ का स्पष्टीकरण किया वह निराधार नहीं है वरन् उसमें अनेकानेक प्रमाण हैं। सुनियेः—

"जबीर के पुत्र सईद से कथित है कि हज़रत इब्न उमर

रज़ीअल्लाहो अनहो बसरा में आये तो पूछा कि फितना की लड़ाई के विषय में आप की क्या आज्ञा है? उन्होंने कहा तू नहीं जानता कि फ़ितना क्या चीज़ है? मुहम्मद साहब मूर्त्ति पूजकों से युद्ध किया करते थे। क्योंकि इन (मूर्त्तिपूजकों) के पास जाना फितना था और तुम लोग जो राज्यसिंहासन तथा देश के जीतने के लिये युद्ध करते हो सो न था"। इस हदीस को उद्धृत कर सय्यद अमीर अली ने यह उपसंहार किया है कि:—"आयत में जिस युद्ध की आज्ञा दी गयी है वह मूर्त्तिपूजा रूप फसाद को दूर करने के वास्ते" है (देखो उनका भाष्य खण्ड ९ पृ० २६६)

हज़रत इब्न उमर मुहम्मद साहब के समकालीन थे। उन्हें इस्लाम का तत्व ज्ञात था अतः ईमानदारी के साथ उन्होंने बता दिया कि मुहम्मद साहब के युद्ध करने का उद्देश्य शिर्क (मूर्त्ति-पूजा) का हटाना था, देश आदि के लिये नहीं। अतः आयतों में जो आज्ञा है वह तो सब को स्पष्ट हो गयी। इस आयत तथा इसकी हदीस के विद्यमान रहते हुए कौन अस्वीकार कर सकता है कि दीन में बलात्कार की आज्ञा कुरान में नहीं है।

इस्लाम परित्याग करने पर क़त्ल का दण्ड

कुरान के अध्ययन से प्रत्येक पुरुष जान सकता है कि काफिरों और मुशरिकों के साथ इनकी नहीं पटती। इन्हें बहुत ही घृणा जनक शब्दों से सम्बोधन किया गया है और आज्ञा दी

गई है कि इन पर जहाद करके इनको या तो मुसलमान बना लिया जाय अथवा कत्ल करके इनका नाम निशान ही मिटा दिया जाय । और कहा गया है कि यदि कोई काफिर वा मुशरिक (मूर्त्तिपूजक) मुसलमान होकर अपने धर्म से फिर पलट जाय और इस्लाम का त्याग कर दे वा इस्लाम धर्म के विरुद्ध कुछ बोले तो उसके लिये प्राणदण्ड के सिवा और कुछ उपाय नहीं है । देखिये कुरान सूरये तोबा में एक आयत है:—

"व इन्न कसू ऐमानो हुम्मिनबादे अहदेहिम व तानू फी दीनेकुम फ़ क़ातिलू अइम्म तलकुफ्रे इन्नहुम ला ऐमान लहुम ल अल्लहुम यन्त हौन् ।"

अर्थ—"यदि काफिर शपथ करने के पश्चात् अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग कर दें तो (हे मुसलमानों) तुम काफिरों के साथ कृताल करो। निश्चय उनको शपथ कुछ नहीं है स्यात् वे बाज़ आ जायें।" इस आयत के भाष्य में भाष्यकर्त्ता ने कहा है कि इसका यह मतलब है कि:—"अगर इन्होंने अहद (प्रतिज्ञा) तोड़ा याने इस्लाम का अहद तोड़ा और मुर्त्तिद (इस्लाम के परित्याग करनेवाले) बन गये और दीन इस्लाम में तान किये तो ये कुफ्र के सरदार हैं; इनको क़त्ल करो...इत्यादि।"

(देखो मवाहिब० खण्ड १० पृष्ठ ६५)

सभ्य जगत् में यदि कोई मनुष्य किसी धर्म को ग्रहण कर के पुनः उसे परित्याग कर देता है तो इस पर उसे कोई दण्ड

नहीं दिया जाता, कारण, कि इस विषय में प्रत्येक मनुष्य को स्वतन्त्रता है। सभ्य जगत् ने तो यहाँ तक स्वतन्त्रता प्रदान कर रक्खी है कि मनुष्य चाहे जिस धार्मिक सिद्धांत की समालोचना करे वा उसका खण्डन करे इसके लिये कानून की धरपकड़ नहीं है। परन्तु कुरान ने तो स्पष्ट आज्ञा ही दी है कि इन्हें वध कर दिया जाय। देखिये इसी के स्पष्टीकरण में शरह वक़ाया खण्ड ३—मुर्त्तिद अध्याय के आरम्भ में (अनुवाद नुरूलहेदाया का दिया जाता है)

"मुर्त्तिद (इस्लाम के छोड़ने वाले) पर इस्लाम पेश किया जावे उनके दिल में मुसलमानी के दीन में शुवहे हों तो दूर किये जावें अगर मोहलत तलब करें तो तीन दिन तक मोहलत, अगर इस अर्से में तोवा करें तो वेहतर वरना क़ताल किया जावे।"

शरह वक़या इस्लामी कानूनी पुस्तक है जिसके अनुसार मुसलमान राजा राज्यशासन करते हैं।

"सहीह वुखारी में मरवी (कहा गया) है कि फरमाया आपने (अर्थात् मोहम्मद साहब ने) "मन वद्दल दीनहू फक तोलूहो" अर्थात् जो शख्स बदल डाले दीन अपना, तो क़त्ल करो उसको"

फिर इसी पुस्तक में मुसलमानी धर्म परित्याग करने वाली स्त्री के लिये आज्ञा है कि—

"अगर औरत मुर्त्तिद हो जावे तो उसको जान से न मारे बल्कि कैद करे यहां तक कि तोवा करे और इमाम शाफई

(मुसलमानों के एक बड़े आचार्य हुए हैं) के नज़दीक कतल की जावे'

इससे बढ़कर धर्म विषय में बलात्कार और क्या हो सकता है। मुसलमानों ने कुरान तथा हदीसों के द्वारा मनुष्य के विचार स्वातन्त्र्य का भी हरण कर लिया है। अभी हाल ही में भूपाल की बेगम ने इन्हीं आयतों का अनुसरण करते हुए अपनी रियासत में यह कानून जारी कर दिया है कि यदि कोई मुसलमान इसलाम धर्मको परित्याग करे तो उसे कारागार का दण्ड सहन करना पड़ेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि बेगम साहबा स्वतन्त्र रानी रहतीं तो अवश्यमेव ऐसे लोगों के लिये इसलामी व्यवस्था के अनुसार वध करने की आज्ञा जारी कर देतीं पर बृटिश गवर्नमेण्ट के अधीन होने के कारण दीन की आज्ञा को यथावत् पालन करने में असमर्थ हैं।

उपर्युक्त कुरानी आयत में कहा गया है कि काफिरों के सरदारों के साथ क़ताल करे। काफिरों के सर्दारों से क्या मतलब है इस पर भाष्यकारों का मतभेद है कि किसी का कथन है कि फारस देश तथा रूम के लोग शिक्षित हैं तथा कोई किसी किसी जाति विशेष का अर्थ करते हैं भगवान ही जाने की आं हज़रत ने इसका क्या तात्पर्य समझा था। एक कथा इसी के सम्बन्ध में हदीसों में पाई जाती है यथाः—

"जबीर के पुत्र नफीर का कथन है कि जब हज़रत अबूबकर ने मुसलमानी फौज को शाम देश पर चढ़ाई करने के लिये

भेजा तो इनसे कहा कि बहुत ही शीघ्र तुम काफ़िरों की ऐसी जाति पाओगे जिनके सरों पर चन्दियें मूंडी हुई और आस पास बाल होंगे, याने बीच में शैतान की खड्डी रखाये होंगे अतः शैतान की खड्डी पर तलवार मारो। क़सम है अल्लाह की कि यदि मैं इनमें से एक का क़त्ल कर डालूं तो दूसरे काफ़िरों में से सत्तर को क़त्ल करने से मुझे अधिक पसन्द है क्योंकि अल्लाह ने कहा है कि काफ़िरों के सरदारों को क़त्ल करो।"

'काफ़िरों के सर्दारों' का मतलब तो हल हो गया, जिन्हें क़ुरान तथा हदीस से भय है वे महाशय माथे पर शैतान की खड्डी रखने से बाज़ आवें।

युद्ध का उद्देश्य इसलामी कलमे का प्रचार

क़ाफ़िरों के साथ वा किसी जाति के साथ युद्ध करना तो आपत्तिजनक नहीं है यदि युद्ध न्याय पूर्वक हो, क्योंकि इतिहास के अध्ययन से देखा गया है कि संसार में युद्ध सर्वदा विद्यमान रहा है। परन्तु इन युद्धों का उद्देश्य स्वत्व की रक्षा तथा प्रजा का संरक्षण है और पीड़ित जाति को अन्याय आदि अत्याचार से बचाना है। परन्तु युद्ध का उद्देश्य किसी मत विशेष का प्रचार ही करना हो तो इससे घृणित कार्य संसार में और क्या हो सकता है। मुसलमानी धर्मपुस्तकों में जितने प्रकार के युद्धों का वर्णन है उन सब का उद्देश्य इसलाम का प्रचार ही है। जो मनुष्य इसलाम धर्म के सिद्धान्त को इच्छा पूर्वक ग्रहण न करे उस पर बलात्कार किया जाय यही मुसल-

मानी युद्धों का उद्देश्य है और इसी प्रकार मुहम्मद साहब कहते रहे जैसा कि पहिले सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है। युद्ध में एक योद्धा नाना प्रकार के उद्देश्यों को सामने रख कर लड़ाई कर सकता है पर इसलाम के अनुसार जब तक इसलामी कलमे के प्रचार के उद्देश्य से युद्ध न किया जाय तब तक युद्ध करने वाला ईश्वर के मार्ग पर नहीं है। देखिये इसी उद्देश्य की एक हदीस किताब मिशकातुल मसाबीह खण्ड ३ किताबुल जहाद अध्याय १—

"अन अबी मूसा क़ाल जाअरजोलन एलन्नबीये सल्लल्लाहो अलैहे वसल्लम फक़ाल अर्रजोलो योक़ातेलो लिल मग़नमू वर्रजोलोयो का तेलो लिज़्ज़िक्रे वर्रजोलो योक़ातेलो लेयरेय मकानहु फ़मन फीसबीलिल्लाहे क़ाल मन क़ातेल लेतकून कलमतिल्लाहे हेयल अलीया फ़होवफ़ी सबीलिल्लाहे।"

अर्थात् अबू मूसा का कथन है कि एक पुरुष हज़रत मुहम्मद साहब के पास आया और पूछा कि कोई पुरुष तो इसलिये युद्ध करता है कि उसे लूट का धन प्राप्त हो तथा कोई पुरुष इसलिये युद्ध करता है कि लड़ाई में अपनी वीरता दिखलावें और कोई पुरुष इसलिये युद्ध करता है कि इन (तीनों) में से कौन पुरुष अल्लाह के मार्ग में है (इस पर मुहम्मद साहब ने) उत्तर दिया कि वही पुरुष अल्लाह के मार्ग में है जो इस उद्देश्य से युद्ध करता है कि अल्लाह का कलमा और दीन इसलाम सबसे उच्च किया जावे।

युद्ध के विषय में मुहम्मद साहब की राय मालूम हो गई अर्थात् दीन इसलाम का प्रचार करना। जब युद्ध ही के द्वारा कलमे के प्रचार करने की शिक्षा है तो आप स्वयं विचार कर देखिये कि धर्म के लिये बलात्कार करने में और क्या होता है।

अनजाने विपक्षी के ऊपर चढ़ाई

कभी कभी मुसलमान मौलवी लेकचरों में यह कहते और पुस्तकों में लिखते भी हैं कि इस्लाम ने हमें युद्ध करने का नियम यह बतलाया कि प्रथम विपक्षी को अपने ऊपर वार करने का अवसर दिया जाय उसके वार करने के पश्चात् मुसलमान उन पर वार करें इत्यादि। यह उक्ति भी सर्वथा प्रमाण शून्य है। केवल अपने आदर्श को उच्च सिद्ध करने के लिये ये बातें बना ली गई हैं। इस्लामी इतिहास में इसके विरुद्ध अनेकानेक प्रमाण हैं। औरों की बात तो कहाँ तक गिनावें स्वयं हजरत मुहम्मद साहब अपनी धुन के इतने पक्के थे कि अपने धर्म के प्रचार करने में इतर धर्मावलम्बियों को वध करने में कोई कसर बाकी नहीं रक्खी। उन्हें प्रथम वार करने का अवसर कभी नहीं दिया गया, वरन् वे जब किसी और और काम में निमग्न रहते थे और उन्हें युद्ध तक की खबर नहीं रहती थी तो भी हज़रत उन पर हठात् आक्रमण करके उन्हें वध किया करते तथा उनके बाल बच्चों को बन्दी बनाया करते थे (देखिये मेशकात खण्ड २ किताबुल जहाद बाबुल कताल फिल जिहाद अध्याय १):—

"अन अब्दुल्लाह बिन औन अन नाफेअन कतब यलेहे यखब-

रहो अन्न इब्न उमर अखबर हो अन्नन्नबीये सल्लल्लाहो अलेहव-सल्लम अगार अलाबनीलमुस्तलेकिन गाईयीन फी नअमहिम विलमरीसीए फकत लतमोकोतल्लतनवयसीयन्नजरीयतहु ।"

अर्थात् "औन के पुत्र अब्दुल्ला का कथन है कि नाफ़ेने मेरे पास एक पत्र इस आशय का लिखा है कि उन्हे उमर के पुत्र ने बतलाया है कि मुहम्मद साहब ने मुसतलक वंशियों को नाश करने के लिये उन पर चढ़ाई करदी. उस समय वे (अर्थात् मुसतलक वंशी) अपने पशुओं के चराने में लगे हुए थे। (उन्हें युद्ध की कोई सूचना नहीं थी और वे निहत्थे थे) हज़रत ने उनके जत्थे को क़त्ल कर दिया और उनके बाल बच्चों को कैद कर लिया।"

जेनरल डायर से हज़रत कम ही क्या थे ? बेचारों पर अचानक चढ़ाई करके उन्हें वध कर दिया। इससे बढ़कर बहादुरी और क्या हो सकती है ? दीन के जोश ने हज़रत को यहाँ तक आपे से बाहर कर रक्खा कि युद्ध में सिवाय वध के और कुछ सूझता नहीं था। जैसे अनजान में लोगों पर आक्रमण कर के उन्हें क़त्ल करने की बात का ऊपर वर्णन हो चुका है, इस प्रकार बेचारे बूढ़ों को क़त्ल करने के लिये भी हज़रत की कड़ी आज्ञा थी। मिशकात के उपर्युक्त स्थान पर अध्याय २ में एक हदीस इस प्रकार है:—

बूढ़ों को क़त्ल करने की आज्ञा

"अन समरतिन बिन जन्दब अन्नन्नबीये सल्लल्लाहो अलैहेवसल्लम क़ाल उक़तोलु शयूख़ुल मुशरेकिन ॥"

अर्थात् जन्दब के पुत्र समरा का कथन है कि मुहम्मद साहब ने कहा है कि मूर्त्तिपूजकों के वृद्धों को क़त्ल कर डालो।"

पाठको ! आपने देखा आं हज़रत को कितनी दूर की बात सूझी है कि मूर्त्ति पूजा करनेवाले बूढ़ों को मार डालो अर्थात जब सब बूढ़े बेचारे मारे जायेंगे तो बच्चों को धर्म कर्म का उपदेश कौन देगा। उन्हें लाचार होकर अपने अपने धर्म पथ से भ्रष्ट होना पड़ेगा और कभी न कभी इसलाम के शरण में आने के लिये वाध्य होना पड़ेगा। अनुयायियों के हृदय में कभी कभी दया भी आ जाती थी पर हज़रत तो चाहते थे कि येन केन प्रकारेण काफ़िरों का नाम निशान ही संसार से मिटा दिया जाय इसलिये क़त्ल करने में किसी का लिहाज न रक्खा जाय, चाहे बूढ़ा हो या बच्चा या स्त्री।

स्त्रियों तथा बच्चों के कतल करने की आज्ञा

बूढ़ों के विषय में आज्ञा है सो तो आप ने देख लिया अब देखिये स्त्रियाँ तथा बच्चों के विषय में आप क्या फरमाते हैं (देखो मिशकात खण्ड ३ किताबुलजिहाद बाबुल क़ताल फील जिहाद अध्याय १) :—

'अनास्साब बिन जतामते काल सोय्लरसुल्लुल्लाहो सल्लुल्लाहो अलैहे वसल्लमअस अहलिद्दयारे यबतयून मिनलमुशरेकीन फ़ यसाब मिननसाएहिम व ज़रारोहिम काल हम मिनहुम।"

अर्थात्—जताम के पुत्र साहब का कथन है कि मोहम्मद

साहब से घर में रहने वालों के विषय में पूछा गया कि जब मूर्त्ति पूजकों के घरों में रात को छापा मारा जायगा तो वहाँ उनकी स्त्रियाँ तथा बच्चे भी पायेंगे उन्हें क्या करना चाहिये और हज़रत ने उत्तर दिया कि वे भी उन्हीं में से हैं"

"वे भी उन्हीं में से हैं," इसके भाष्य में मौलाना हक़ मोहद्विसे देहलवीने अशअतुल लमआत में लिखा :—

"गुफ्त औ वाक़नेस्त वक़ुश्तेशुदन निसायव ज़रारी ज़ीरा केपशान निशाय व ज़रारि अज़ पशानन्द याने अज़ मर्दान मुशरिकान व दर हुक्म पशानन्द जाहिरई हदीस दराजवाजे फसले निसाये व सिबिया नश्त ।"

अर्थात् आँ हज़रत ने कहा कि स्त्रियाँ तथा बच्चों के मार डालने में कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि ये स्त्रियाँ तथा बच्चे उन्हीं में से हैं अर्थात् मूर्तिपूजकों में से हैं और इनके लिये भी वही आज्ञा है। इस हदीश में स्त्रियों तथा बच्चों के कतल करने के विषय में प्रकट विधि है।

संसार में इससे बढ़ कर रोमांचकारी दृश्य और क्या हो सकता है कि धर्म के जोश में पागल होकर मनुष्य किसी के घरमें रात को छापा मारे और घरवालों में से सबको क़त्ल कर डाले यहाँ तक कि स्त्रियों और नन्हें नन्हें बच्चों को भी न छोड़ा जाय प्राण के भय से इस दशा में प्रायः लोग अपना पैतृक धर्म परित्याग करने के लिये उद्यत हो जाते हैं और हत्यारे के मत को स्वीकार कर लेते हैं जैसे कि आगे आपको विदित

होगा कि इसलाम के इतिहास में ऐसी ऐसी सहस्रों घटनाएँ भरी पड़ी हैं। प्रायः संसार में जो इसलाम का प्रचार हुआ है उसका मूल साधन यही था। उपदेशादि के द्वारा धर्म प्रचार करने के दृष्टान्त अत्यल्प पाये जाते हैं, परन्तु वलात्कार द्वारा लोगों को अपने सम्प्रदाय में लाने की घटनाओं से प्रायः इसलामी इतिहास पूर्ण है। इस समय संसार की कायापलट होगई है, अतः डरा और धमका करके तलवार के भय से किसी को अपना धर्म परित्याग करने के लिये वाध्य करना कठिन काम है। अन्यथा यदि मुसलमानों के हाथ में शक्ति रहती तो फिर संसार के धार्मिक इतिहास के पृष्ठ मनुष्य-रक्त से लिखे जाते।

अपने सम्प्रदाय के प्रचार करने में मोहम्मद साहब ने तलवार से काम लेना उचित समझा तथा ऐतिहासिक दृष्टि से उन्हें इसमें सफलता भी प्राप्त हुई। यहां तक कि उनके जीवन काल ही में कतिपय भागों को छोड़ कर प्रायः अरब के समस्त लोगों ने उनके धर्म को स्वीकार कर लिया था, इस घटना से प्रायः लोगों के हृदयों में शङ्का उत्पन्न होती है कि तलवार से धर्म विषयक ऐसी सफलता प्राप्त करना असम्भव सा जान पड़ता है परन्तु यह कोई असम्भव वात नहीं है। संसार के भिन्न भिन्न देशों के इतिहास पढ़ने से पता लग जायगा कि तलवार ने ससार की कायापलट करने में वड़ा ही भाग लिया है, हां यह और बात है कि तलवार के द्वारा स्वीकार किये हुये धर्म के भाव चिरस्थायी नहीं रहते तथा भविष्य में इसका परिणाम बुरा होता है। आगे

चलकर पता लगेगा कि यही कारण है कि हज़रत मुहम्मद साहब के पश्चात् ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता गया इसलाम भी लोगों के हृदयों से शिथिल होता गया है। स्वयं मुहम्मद साहब को पता था कि अन्त में इनके सम्प्रदाय का परिणाम बुरा होगा यहाँ तक कि जिन लात और उज्जा नामक मूर्त्तियों की पूजा हटा कर लोगों को मुसलमान बनाया गया था और अपने बाप दादों के धर्म का परित्याग कराया गया था, पुनः लोग अपने बाप दादों के मत को मानने लग जायेंगे तथा इनमें मूर्त्तियों की पूजा आरम्भ हो जायगी यह भाव हज़रत मुहम्मद के हृदय में क्यों आया ? इसका सीधा उत्तर है कि जिस प्रकार वह दीन इसलाम का प्रचार कर रहे थे उससे अनुमान होगया था कि जब तक बल है तब तक तो लोग लाचार मुसलमान रहेंगे और बल के समाप्त होने पर पुनः लोग अपने पहिले धर्म पर लौट जायेंगे अन्यथा और कोई कारण उनके हृदय में ऐसे भाव उदय होने का नहीं हो सकता। (देखो मिशकात किताबुल फोतन बाब लात कुमुस्सायत किताबुल फोतन बाब लात कुमु-स्सायत फसिल १)।

"अन आयशार जवल्ल होअनहो कालतसमेतो रसूलिल्लाह सल्लल्लाहो अलेहेव आलेहीव सल्लम यकूलो लाय-ज़हबुल्लेलो वन्नहारो हत्ता योवे दुल्लात वलउज्जा—फयहज़ ऊन पला दीने आबाएहुम रब हो मुसलिम"

अर्थात् बीबी आयशा का कथन है कि मैंने मुहम्मद साहब

को यह कहते हुए सुना कि दिन और रात्रि का अन्त नहीं होगा, जबतक लात और उज्ज़ा (मक्का के मन्दिर काबे में दो प्रसिद्ध मूर्त्तियाँ थीं) की पूजा फिर आरम्भ न हो....... और लोग अपने बाप दादों के धर्म पर फिर लौट जायँगे। इस कथा को मुसलिम ने वर्णन किया।"

साढ़े १३ सौ वर्षों के अन्तर्गत ही हज़रत मुहम्मद का सम्प्रदाय अनेकानेक मतमतान्तरों में विभक्त हो गया और अब सम्भव नहीं है कि ज्ञान विज्ञान के प्रकाश में इसके सिद्धान्त अधिक दिनों तक ठहर सकेंगे। यही कारण है कि वर्त्तमान समय के कतिपय मौलवी ऊटपटाङ्ग सिद्धान्तों पर लीपा पोती करते जा रहे हैं और और कुरानी आयतों के अर्थ की खींचा-खाची कर उसे पालिश करते जाते हैं। यदि हज़रत मोहम्मद साहेब आरम्भकाल ही से लोगों को बलात्कार कर उन्हें इस्लाम स्वीकार करने के बदले उनकी बुद्धि को अपनी ओर आकर्षित करते और नाना कठिनाइयों को सहन करते हुए भी शान्त और गम्भीर भाव से सत्य का प्रकाश करते तो इस्लाम समस्त संसार के हृदयों में अङ्कित हो जाता। यह और बात है कि उनके जीवन में इस्लाम को यह कामयाबी न होती परन्तु इसका भविष्य उज्ज्वल रहता। इसके अन्धकार पूर्ण भविष्य को स्वयं हज़रत समझते रहे। हमें इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जब तक हज़रत मुहम्मद साहब अपनी जन्मभूमि मक्का नगर में रहे तब तक तो शान्ति पूर्वक धर्म का प्रचार करते थे। उस समय

उन्हें कतिपय कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ा। यहाँ तक कि मक्का निवासी कुरैशजाति के लोग इनके साथ शत्रुता करने लग गये और उनके प्राणों के ग्राहक बन गये। प्राणरक्षा के लिये हज़रत को अपनी जन्मभूमि मक्का परित्याग करने के लिये बाध्य होना पड़ा और मदीना नगर में जाकर रहने लगे। वहाँ के कुछ मनुष्यों ने इनके नूतन धर्म को स्वीकार किया और एक जत्था बनाकर रहने लग गये। परन्तु मक्का के शत्रुओं से बदला लेने का विचार सर्वदा हृदय में विद्यमान रहा और अरब के और जातियों के सदृश इनके जत्थे भी व्यापारियों के लूट मार करने पर तुल गये। जैसे जैसे शक्ति बढ़ती गई हज़रत वैसे ही वैसे दीन के प्रचारार्थ बलात्कार के साधन को काम में लाने लगे। प्रायः इतिहास में देखा जाता है कि तलवार के द्वारा लोगों ने धर्मप्रचार में बड़ी सफलता प्राप्त की है जैसा कि जार्ज सेल साहब ने अङ्गरेजी कुरानानुवाद की भूमिका खण्ड २ पृ० ३८ में लिखा है:—

"......from whence the politicion observes, it Follows that all the armed prophets have succeeded, and the unarmed ones have failed Moses, Cyrus Theseus and Romulus would not have been able to establish the observance of their institution for any lenghth of time had they not been armed"

अर्थात्......"जिससे राजनीतिक पुरुषों ने विचार प्रकट किया है कि इससे यही सिद्ध होता है कि शस्त्रधारी पैगम्बरों

को सफलता हुई तथा निहत्थे विफल मनोरथ रहे। मूसा, साइरस, थिसियस और रोमुलस अपनी अपनी संस्थाओं के मान की स्थापना में कुछ काल तक भी सफलीभूत नहीं होते यदि ये शस्त्रधारी न होते।"

अतः यदि मुहम्मद साहब को अस्त्र शस्त्र के सहारे धर्म-स्थापन करने में सफलता प्राप्त हुई तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, कारण कि उनसे पूर्व उपर्युक्त महोदयों ने भी यही किया था। मुसलमनों का कथन है कि मुहम्मद साहब मूसा के सदृश थे। तो फिर सन्देह ही क्या रहा कि हज़रत मुहम्मद ने भी हज़रत मूसा के सदृश अस्त्र शस्त्र से लोगों को मुसलमान बनने पर मजबूर किया।

हम इसे स्वीकार करते हैं कि मुहम्मद साहब को अपने शत्रुओं के विपक्ष में हथियार उठाने का अधिकार था परन्तु उसी हथियार से उन्हें अपना धर्म परित्याग कराके मुसलमान बनाने की बात सर्वथा अमानुषिक है। संसार में आत्मरक्षण यथा स्वत्व रक्षा के लिये सदा युद्ध होता रहा है और सदा होता रहेगा परन्तु इन युद्धों में कभी भी सभ्य जगत में यह नियम नहीं रहा कि विजेता विजित को अपना धर्म परित्याग करने पर बाध्य करे। इस विषय पर, जार्ज सेल साहब ने लिखा है:—

"The method of converting by the swod gives no very favourable idea of the faith which is so propagated, and is disallowed by every body in those of another religion, though the same persons are willing to admit

of it for the advancement of their own; supposing that though a false religion ought not to be established by authority, yet a true one may; and accordingly force is almost as constantly employed in those cases by those who have the power in their hands, as it is constantly complained of by those who suffer the violence. It is certainly one of the most convincing proofs that Mohemadanism was not other than human invention, that it owed its progress and establishment almost entirely to the Sword.

अर्थात् तलवार के द्वारा धर्म प्रचार करने का उपाय इस प्रकार प्रचारित धर्म के विषय में बहुत अनुकूल भाव होने नहीं देता और दूसरे धर्मों के कोई अनुयायी इसे अच्छा नहीं समझते यद्यपि वही पुरुष अपने धर्म की उन्नति के लिये इसे स्वीकार करने को इच्छुक हैं; उनकी कल्पना है कि मिथ्या धर्म की स्थापना तो हुकूमत के सहारे न हो, परन्तु सत्यधर्म ऐसा कर सकता है, इसीलिये जिनके हाथों शक्ति है उनके द्वारा ऐसी दशाओं में बलात्कार का उपयोग सर्वदा किया गया जैसा कि पीड़ा सहन करने वालों ने इसकी सर्वदा निन्दा की हैं। निःसन्देह यह एक अत्यन्त विश्वासोत्पादक प्रमाण इस बात का है कि मुहम्मदी धर्म मानवीं आविष्कार के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। क्योंकि इसकी स्थापना तथा उन्नति पूर्णतया तलवार पर ही थी इत्यादि।

जार्ज साहब की उपरोक्त राय से प्रायः समस्त विद्वान सह-मत हैं और होना भी चाहिये, क्योंकि धर्म का सिंहासन मनुष्य की अन्तरात्मा है जिसको प्रेम तथा सद्भाव से ही वश कर सकते हैं। बौद्ध धर्म तथा वैदिक धर्म के अतिरिक्त सब धार्मिक सम्प्रदायों ने तलवार को परम साधन माना है और इसलाम के प्रवर्त्तक का तो इसमें खास हिस्सा रहा।

कुरान और हदीसों के अध्ययन से विदित होता है कि मुहम्मद साहिब ने जो इतर धर्मावलम्बियों पर बलात्कार करना प्रारम्भ किया था वह कार्य्य शनैः शनैः हुआ था। हजरत को भी अपने भावी भौतिक बल के इतने बढ़ जाने का विचार प्रथम नहीं था यही कारण है कि जब उनकी शक्ति स्वल्प रही तो बलात्कार की विधि करने वाली आयतें भी जो अल्लाह मियां के यहां से उतरती रहीं वे भी धीमें टोन में थीं। आरम्भ में तो उनमें बताया गया है कि मुहम्मद तुम पर बलात्कार करने नहीं आया उसका काम तुम्हें सन्देशा पहुँचा देना मात्र है यथा कुरान सूरा आल इमरान रकुअ १९:—

"कुल लिल्लजीन ओतुल किताबऽलउम्मी ईन अ असलम तुम फ़इन असलमू फक़देहत दूऽय इम तवल्लं ऽफइलमा अले-केल बलागो बल्ला हो बसीरुन दिलय बाद्।"

अर्थात् "और कहदे पुस्तक वालों को (अर्थात् उन धर्मा-नुयायियों को जिनके पास धार्मिक पुस्तक है और अनपढ़ों को) कि क्या तुमने भी मान लिया है अतः यदि मान लिया तो तुमने

सन्मार्ग पाया और यदि हट रहे तो (हे मुहम्मद) तेरा जिम्मा केवल (सन्देशा) पहुंचा देना है और अल्लाह देखने वाला है अपने सेवकों को।"

इस आयत में मुहम्मद साहब का जिम्मा केवल अल्लाह का सम्वाद लोगों तक पहुँचाने ही का कर्त्तव्य है और किसी बात के लिये ताकीद नहीं की गई है वरन् किसी किसी स्थान में तो कुरान में इस प्रकार का आदेश भी पाया जाता है।

"ला तोते इलकाफ़ेरीन वऽल मोनाफेक़ीन वदअअ अजहुम व तवक्कल अल्लाहे व कफा बिल्लाहे वकीला" (सूर अखराब रोकुअ—३७)

अर्थात (हे मुहम्मद !) "काफिरों और कपटियों का कहना मत मान और उनको सताना छोड़ दे और अल्लाह पर भरोसा कर और अल्लाह ही बस है काम बताने वाला"

इस आयत में तो हजरत को काफिरों से केवल सहयोग करने का आदेश दिया गया है कि उनको सताना छोड़ दे अर्थात् उन पर लूट मार न कर और न किसी प्रकार का बलात्कार ही कर। ऐसी आयत उस समय हजरत पर उतरीं जब इनकी शक्ति कम थी अतः भय था कि यदि उनसे युद्ध छेड़ दिया जाय तो परिणाम अपने लिये बहुत ही बुरा होगा इसी लिये पहले तो हजरत ने समझा बुझा कर लोगों को अपने दीन में लाने का काम प्रारम्भ किया और जब देखा कि कुछ लोग अपने पक्ष में एकत्रित हो गये हैं और इसी प्रकार

शनैः शनैः प्रचार का फल इच्छानुकूल नहीं होगा तो फिर अल्लाह मियाँ के यहाँ से इस आशय की आयतें उतारने लग पड़े, यथा :—

वद्दू लौ तकफ़ुरून कमा कफ़रूफ़ तकूनून सवा इ अनू फला तत्तखे ज़ूऽमिनहुम औलियाइअ हत्ता योहाजेरूऽफी सबी लिल्लाहे फइनतवल्लऽफखज़ू हुम् वऽकतोलूहुम हैसो भजहुत्तमूहुम वलियोंव्वलान सीरा (सूरा निसारीकु० १२ आयत ८९)

अर्थात् वे (काफिर) चाहते हैं कि जैसे वे काफिर बने वैसे ही तुम भी काफिर बनो जिसमें सब एक जैसा बन जाओ अतः उसमें से किसी को मित्र मत बनाओ जब तक कि वे अल्लाह के मार्ग में गृह परित्याग न करें। फिर यदि वे पलट जायें तो उनको पकड़ो और उन्हें कत्ल कर डालो जहाँ कहीं उन्हें पाओ, और उनमें से किसी को मित्र वा सहायक न बनाओ।"

बस क्या था ? जब देखा कि अवसर है लोग समझाने से नहीं समझेंगे और शास्त्रार्थ आदि करने में भी उनसे पार पाना कठिन है, तो काफिरों को पकड़ने और उन्हें कत्ल करने के लिये हजरत अपने अनुयायियों को उकसाने लगे। हाँ एक चालाकी उन्होंने अवश्य की कि पहिले तो तलवार उठाने से भय करते रहे अतः यह आदेश देते रहे कि यदि वे काफिर तुम पर वार करें तो तुम भी वार करो। फिर जब काफिरों का सङ्गठन निर्बल हो गया, अवसर पाकर हजरत ने भी आदेश को पलट दिया, अर्थात् पुनः इस प्रकार का आदेश देने लगे

कि जहाँ कहीं उन्हें पाओ उन्हें कत्ल कर डालो और यदि मुसलमान बन जावें तो छोड़ दो और अपने जत्थे में मिला दो। देखिये एक आयत इस आशय का है :—

"व कतिलूऽफी सबीलिल्लाहिल्लजीन योक़ातिलुनकुम् व ला तअतदुऽ इन्नलाह ला योहिब्बुल मोते दीन"।

(सूराबकर रैकु २४)

अर्थात् "और अल्लाह के मार्ग में तुम उन लोगों से लड़ो जो तुम से लड़ें और ज्यादती मत करो और अल्लाह ज्यादती करने वालों को पसन्द नहीं करता"।

इस आयत के देखने से तो विदित होता है कि इसमें कोई अन्याय की बात नहीं है। यह नियम तो सर्वत्र रहना चाहिये कि लड़ने वालों के साथ लड़ाई करना चाहिये तथा आयतमें यह आदर्श भी बहुत उत्तम रक्खा गया है कि शत्रुओं पर ज्यादती नहीं करनी चाहिये और प्रायः मौलवी इसी आशय की आयतों को पत्रों में लिखकर विद्वानों को यह बताने की चेष्टा करते हैं कि देखो कुरान में यहां तक सहनशीलता का आदेश है कि अपने शत्रुओं से भी तब ही युद्ध करने के लिये कहा गया है कि जब वे प्रथम लड़ाई करने पर उद्यत हों। उस पर भी मुसलमानों को आदेश किया गया कि देखो उन काफ़िरों पर, ज्यादती न करो क्योंकि ठीक ही है उपर्युक्त आयत में बहुत उत्तम आदर्श का वर्णन है पर यदि अल्लाह मियां मुसलमानों को सर्वदा इसी आदेश पर स्थिर रहने की आज्ञा देते और हज़-

रत मुहम्मद साहब भी समस्त जीवन इसी का अनुसरण करते रहते तो संसार की मजाल नहीं था कि उन पर अंगुली उठाता। परन्तु कुरान के अध्ययन से पता लगता है कि न तो अल्लाह मियां ने ही उपर्युक्त आदेश पर मुसलमानों को सर्वदा चलने के लिये कहा और न मुहम्मद साहब ने इस आज्ञा का जीवन में पालन कर सफलता प्राप्त करने की आशा देखी उपर्युक्त आयत के उतरने का अवसर भाष्यकारों ने यह बतलाया कि मुहम्मद साहेब जब मक्का से मदीना पलायन कर गये तो उसके पश्चात् अल्लाह ने उन्हें आज्ञा दी कि काफ़िरों के साथ जहाद करो अतः बद्र, ओहद, खन्दक आदि स्थानों में उन पर जहाद किया गया फिर ६ साल से हिजरी सम्वत् में मुहम्मद साहब ने मदीने से चल कर मक्का आने का विचार किया क्योंकि जिससे तीर्थ करें। जब रास्ते ही में थे और हदीबिया नामक स्थान पर ठहरे हुए थे तो उन्हें पता लगा कि मक्का निवासी कुरैश जाति के काफ़िर लड़ने के लिये उद्यत हैं। अतः इस वर्ष मक्का जाना और तीर्थ करना दुष्कर था तो उन काफ़िरों से हज़रत ने सुलह कर ली और दस वर्ष के लिये सुलह की प्रतिज्ञा हुई और यह निश्चय हुआ कि इस वर्ष तो हज़रत मोहम्मद अपने साथियों समेत मदीने को लौट जायें काबा का दर्शन करने नहीं पायेंगे हां आगामी वर्ष वे आवें तो कुरैश तीन दिन के लिये मक्का खाली कर देंगे। इस प्रतिज्ञा के अनुसार जब तक वर्षों के पश्चात मुहम्मद साहब ने पुनः तीर्थ

करने के लिये तय्यारी की तो इनके साथियों और मित्रों के हृदयों में सन्देह उत्पन्न हुआ कि स्यात् कुरैश अपनी प्रतिज्ञा को भङ्ग करें और लड़ने लग जावें तो क्या किया जायगा क्योंकि तब अरबी का महीना ज़िल हज्जा था जिसमें युद्ध करना मना था दूसरे तीर्थ स्थान में ऐसी दशा में युद्ध कैसे कर सकते थे। इसी बात के फैसला करने के लिये कुरान में उपर्युक्त आशय का आयत अल्लाह मियां ने उतारी। विदित हो कि कुरैश जाति के लोगों ने अपनी प्रतिज्ञा को भंग नहीं किया और बड़ी शांति पूर्वक मुहम्मद साहब ने अपने साथियों समेत उस वर्ष मक्के की तीर्थयात्रा समाप्त की और किसी प्रकार की लड़ाई आदि परस्पर नहीं हुई।

अब सुनिये क्या नया गुल खिलता है। काफ़िर बेचारे तो अपनी बात पर पूरे उतरे। वृथा युद्ध करना उन्होंने उचित नहीं समझा और बेचारे युद्ध ही क्यों करते क्योंकि उन्हें अल्लाह मियाँ की ओर से कोई नया धर्म तो प्रचार करना ही नहीं था। पर हाँ उपर्युक्त आयत के उतरने से मुहम्मद साहब को कठिनाई का सामना करना पड़ा। क्योंकि अल्लाह मियाँ के यहाँ से यह आयत तो उतार लाये कि जब काफिर लड़े तो उनसे लड़ो और उन पर ज्यादती मत करो। अब यदि मुहम्मद साहब इस आदेश के अनुसार अपने तथा अपने अनुयायी मुसलमानों का जीवन सङ्गठन करते हैं तो पुनः इस्लाम का प्रचार होना असम्भव है क्योंकि काफिर कोई ऐसे भोन्दू तो थे

ही नहीं कि हजरत पर उतरी हुई कुरानी आयतों पर ईमान ले आयें और आँख बन्द करके उनके कहे पर चलने लग जायें। एक ओर काफिरों की ऐसी दशा दूसरी ओर यह आयत उतर गई कि "जब वे लड़ें तो लड़ो और ज्यादती मत करो।" हज़रत के लिये बड़ी ही विकट समस्या उपस्थित हुई, पर हज़रत अपनी धुन के पक्के थे इस्लाम का येन केन प्रकारेण प्रचार करना था, अनुयायियों की संख्या में वृद्धि करनी थी। अब अनुयायी कैसे बढ़ें यदि उस तीर्थयात्रा के समय काफिर अपनी प्रतिज्ञा भंग करके लड़ने लग पड़ते तो भी उनको अवसर था कि उन पर इस्लाम पेश करते और विजय होने पर तो पौ बारह ही थी, सिवाय इस्लाम के उनसे कुछ कबूल ही नहीं होता। जब आँ हजरत ने देखा कि काफ़िर उन्हें छेड़ते भी नहीं और न इस्लाम ही स्वीकार करते हैं तो दूसरा उपाय यही था कि उन्हें छेड़ा जाय तथा उनपर बलात्कार किया जाय। परन्तु उपर्युक्त कुरान आयत के आदेश की विद्यमानता में ऐसा करते भी नहीं बनता था अब कैसे बने? पाठकों को विदित है कि कुरान में नासिख और मनसूख का बहुत झमेला है अर्थात् जब एक आयत में एक विधि होती है तो दूसरी आयत में उसके प्रतिकूल विधि के द्वारा उसे रद् कर दिया जाता है अर्थात उसी आज्ञा को अमाननीय समझा जाता है। जैसे किसी राज्य शासन में गवर्नमेंट मौके-महल के अनुसार पहिली आज्ञाओं को अमाननीय ठहराती है इसी प्रकार हजरत मोहम्मद् के अल्लाह

मियाँ भी अपनी आज्ञा को समय समय पर रद्द कर दिया करते हैं। जब अल्लाह मियाँ ने देखा कि उपर्युक्त आयत से तो मेरे पैगम्बर का काम नहीं चलेगा अर्थात् इस्लाम का प्रचार नहीं हो सकेगा तो इस आयत को अल्लाह मियाँ ने अमाननीय ठहरा दिया।

"वऽक़्तोलऽहुम हैस सफ़्क़तेमोहु" इत्यादि।

अर्थात् काफिरों को जहाँ पाओ मारो यहाँ तक कि वे मुसल्मान हो जावें" इत्यादि—यह आज्ञा विशेष कर अरब वालों के लिये है। पाठको! आपने देखा कि किस प्रकार अल्लाह मियाँ की ओर से कभी कुछ और कभी कुछ कहलाया गया है। असली बात तो यह मालूम होती है कि मक्का में तीर्थयात्रा के आने के समय मुहम्मद साहब तथा उनके साथियों को पूरा विश्वास था कि काफ़िर लड़ाई छेड़ देंगे तो फिर क्या है, हम भी उनसे लड़ेंगे और उनपर इस्लाम पेश करेंगे और संसार को यह दिखायेंगे कि इसमें हमारा अपराध ही क्या था। जब कोई हम से शत्रुता करेगा तो हम भी उसके साथ शत्रुता करेंगे। बस चलो, इस पालिसी से संसार में अपना प्रेस्टिज भी स्थिर रहेगा, काम बन जायगा परन्तु वहाँ बात बेढब हो गई। काफ़िरों ने युद्ध नहीं छेड़ा। इन्हें इस्लाम प्रचार करने का अवसर मिला तो झट इस आयत के पश्चात् ही अल्लाह मियाँ के यहाँ से एक आयत और उतार लाये जिसमें उनके युद्ध न छेड़ने का अवसर हो। पढ़िये क़ुरान में इसके पश्चात् वाली आयतः—

"वऽक़तोलूऽहुम हैसो सफ़क़तेवमोहुम वऽखरोजू हुम् मिन हैसो अख़रजूकुम वऽल फ़ित्न तो अशद्दोमेनलक़तले व ला तो कातेलूहुम् इन्दल मसजेदिलहर मेहत्तायोक़ातेलकुम फ़ीह फ़ इन कातलूकुम फ़ऽकतोलूहुम कज़ालेक जज़ाइ ललकाफ़ेरीन। फ़इनिऽन्त हौऽ फ़ इन्नल्लाह ल्लाह गफ़ूरु रहीम, व कातेलूहुम हत्ताला तकून फ़ितन तुंव्व यकू नद्दीनो लिल्लाहं फ़ इनिऽन्त हौ इल्ला अलऽज़ लमीन्।"

अर्थात् जहाँ कहीं उन (काफ़िरों) को पाओ वहाँ भी उनको क़त्ल कर डालो और उनको वहां से निकाल डालो जहाँ से उन्होंने तुमको निकाला, और (इनका) उपद्रव (इनके) क़त्ल करने से बहुत बढ़ा हुआ है और उनसे मसजिद् हरम में युद्ध न करो जब तक कि वे तुमसे वहाँ लड़ें, फिर यदि वे (मसजिद् हरम में तुम से युद्ध करें तो तुम उनको क़त्ल कर डालो, काफ़िरों के लिये यही दण्ड है, फिर यदि वे लोग (मूर्त्तिपूजा) से बाज़ आवें तो अल्लाह क्षमाशील तथा दयालु है और इन मूर्त्तिपूजकों और काफ़िरों को क़त्ल करो। यहाँ तक कि फ़ितना (अर्थात मूर्त्तिपूजा) न पाया जावे और दीन अल्लाह ही के लिये हो जावे, फिर यदि वे (मूर्त्तिपूजा से हाथ उठावें तो इन पर) ज्यादती (उचित) नहीं किन्तु अन्यायियों पर (ज्यादती) उचित है।

तफ़सीर मवाहेबुर्रहमान के लेखक ने इस आयत के भाष्य में लिखा है:—

"अब जानना चाहिये कि इस आयत ने मनसूख कर दिया, पहिली आयत को, (अर्थात् इस आयत की आज्ञा से इसके पहिले वाली आयत की आज्ञा अमाननीय हो गई) अर्थात् पहिली आयत में अल्लाह ने मुसलमानों को इस शर्त पर लड़ाई करने की आज्ञा दी थी कि यदि काफ़िर उनसे पहिले छेड़ छाड़ करें तब मुसलमान भी लड़ने के लिये उद्यत हो जावें, और इस आयत में इनको यह आज्ञा दी गई कि मुसलमान काफ़िरों से लड़ाई छेड़ दें, चाहे काफ़िर इनसे लड़ें या न लड़ें, परन्तु मस्जिद हरम के भीतर तब ही लड़ें जब पहिले काफ़िर छेड़ छाड़ करें।

अब विज्ञ पाठक समझ गये होंगे कि किन किन हथकण्डों से हज़रत ने अपना मतलब साधा है। इस आयत में तो काफ़िरों से छेड़ छाड़ प्रारम्भ करके उन्हें इसलाम पर ईमान न लाने पर क़त्ल कर डालने की स्पष्ट आज्ञा है पर इसमें मसजिद हरम के भीतर पहिले काफ़िरों के छेड़ने की मनाही है, यदि वे छेड़छाड़ करें तो मुसलमान भी उन्हें क़त्ल करें, परन्तु जब मुहम्मद साहब को अवसर हुआ तो इस आज्ञा की (अर्थात् मसजिद हरम में पहिले मत छेड़ो) भी अवज्ञा कर दी और काफिरों के न छेड़ने पर भी उन पर तलवार का प्रहार करा दिया जैसा कि इस आयत के भाष्य करते हुए महाहे बुर्रहमान के पृ० १२६ में लिखा है।

"हज़रत सल्लल्लाहो अलेहे वसल्लमने इब्ने खनज़ल को जो काबा का पर्दा पकड़े चिपटा था वहीं क़त्ल करा दिया।"

अब देखिये उक्त भाष्यकार इस शङ्का का समाधान कैसे करते हैं:—

"जवाब यह है कि यह इसी सायत के अन्दर वाके हुआ था जो अल्लाह ताला ने आप के वास्ते हलाल कर दी थी और खुद हदीस में है कि अगर कोई शख्स यह हुज्जत लावे (अर्थात तर्क करे) कि रसूलल्लाह सल्लल्लाहो अलेहे वसल्लमने इसमें क़ताल किया है, पस, हमको भी क़ताल रवा (उचित) है तो इसको कहो कि अल्लाह ताला ने अपने रसूल के वास्ते इसमें क़ताल करने की एक सायत (घड़ी) के वास्ते इजाज़त दे दी थी और तुम्हारे वास्ते इजाज़त नहीं दी है"

देखा! कैसा उत्तम समाधान किया गया है? चूंकि एक पुरुष को मसजिद हरम के भीतर छेड़ छाड़ न करने पर भी मरवा डाला था जो कुरान की आज्ञा के विरुद्ध रहा तो भाष्याकारों ने इस चालाकी से समाधान किया कि उस घड़ी के लिये हज़रत को उस आज्ञा के भंग करने की आज्ञा हो गई थी। पर विज्ञ भाष्यकार ने इस बात की पुष्टि में कोई कुरानी आयत उद्धृत नहीं की। केवल हदीस पर ही निर्भर रहा जिससे विदित होता है कि जब लोगों में मुहम्मद साहब के उक्त कर्म करने के विरुद्ध चर्चा छिड़ गई होंगी कि उन्होंने एक निरपराधी को काबे के भीतर मरवा डाला जो कुरान की आज्ञा के भी नितान्त विरुद्ध है तो यारो ने इस प्रकार की हदीस पढ़ ली कि हां एक निरपराधी को काबे के भीतर वध करना तो

कुरान के विरुद्ध है, परन्तु हज़रत ने जो ऐसा किया वह उस क्षण के लिये हलाल हो गया था। बात भी ठीक है, हज़रत साहब पर क्यों दोष आने दें, अल्लाह मियाँ की आज्ञाओं का इतना तोड़ मरोड़ किया जावे जिससे हज़रत की सब बात धर्म संगत ही सिद्ध हो। इसी लिये कतिपय भाष्यकारों का कथन है कि क़ताल की आयत ने कुरान की सत्तर आयतों को अमाननीय ठहरा दिया तथा दूसरे भाष्यकारों का कहना है कि क़ताल की आयत ने एक सौ चौबीस आयतों की आज्ञा पर पानी फेर दिया है। इस अवसर पर उन १२४ आयतों को यहाँ लिखना ठीक प्रतीत नहीं होता कि वे कौन कौन सी आयतें हैं जो अमाननीय हो गईं परन्तु उन आयतों को पहचानने के लिये पाठकों को एक उपाय बतलाते हैं, वह यह है कि सारे कुरान का अध्ययन कर जायँ और उन उन आयतों को नोट कर लें जिनमें इतर धर्मावलम्बियों के साथ मेल-मिलाप तथा उनसे मित्रता करने की बात हो तथा इतर धर्मावलम्बियों के साथ उपेक्षा की बात हो तो तत्क्षण समझ जाय कि यह आयत भी उन्हीं १२४ आयतों में है जिसकी आज्ञा को क़ताल की आयत ने अमाननीय ठहरा दिया।

हज़रत मुहम्मद की जहादी स्पिरिट

पाठकों को कुरान हदीस के प्रमाणों के अवलोकन से भली प्रकार विदित हो गया होगा कि इसलाम में इतर धर्मावलम्बियों के साथ किस प्रकार का बर्ताव करने का विधान किया गया

है। यह उसी का फल है कि मुसलमानों की संख्यात्मक वृद्धि उस काल में इतनी तीव्रता के साथ हुई। हज़रत मुहम्मद साहब भी जानते थे कि यदि केवल उपदेश आदि के द्वारा ही इसलाम के प्रचार को करने का विधान किया जाय तो लोग इसमें सम्मिलित नहीं होंगे और मनोवांछित उद्देश्य की पूर्ति भी नहीं होगी; अतः अपनी भौतिक शक्ति की वृद्धि के साथ साथ उन्होंने बलात्कार के स्वभावों को भी उतना दृढ़ किया। यही कारण है कि कुरान में इस विषय में भिन्न भिन्न आशय की आयतें पायी जाती हैं जिनमें बहुत सी परस्पर विरुद्ध आशय की भी हैं। इस विरोध को सुलझाने के लिए कुरान के भाष्य-कारों ने यह मार्ग अवलम्बन किया है कि परस्पर विरुद्ध आयतों में से एक को अमाननीय ठहरा दिया जाय। पर किसे अमाननीय ठहरायेंगे उसके लिये उन्होंने यह नियम अवलम्बन कर रखा है कि जहां कहीं कोमलता तथा प्रेम आदि की बातें टपकती हों उन्हें अमाननीय कह दिया जाय तथा जहाँ कहीं कठोरता, तथा असहिष्णुता आदि की चर्चा हो उसे माननीय बताया जाय। इनमें इन बेचारों का अपराध भी क्या है। यह स्पिरिट उन्होंने स्वयं हज़रत मोहम्मद ही से ग्रहण की है। मुहम्मद साहब की स्पिरिट को हम कुरानी शब्दों में इस प्रकार रख सकते हैं (कुरान सूरये मोहम्मद रोकु १)

फ एजा लकैतुमऽल्लजीन कफरुअ फ जरबऽर्रैक़बे हत्त एज़ा असखन तोमृहुम फशुद्दुऽलकसाक़ फ इम्मामन्न् बअदी व

इम्मा फिद्गाइअ हत्तातज़अलहर्बी औज़ारहा, ज़ालेकवलो यशा इ उल्लायो लऽनतसर मिनहुम व लाकिल्ले यबलूऽ बाअकुम बेबाज़िन वल्लज़ीन कोतेलूफी सबालिल्लाहे फलैंबय ज़िल्लआमालहुम।

अर्थात् (हे मुसलमानो) जब तुम उन लोगों से मुलाक़ात करो जो काफ़िर हैं तो उनकी गर्दन मारो, यहां तक कि जब चूर कर दो उनको, कैद करने में कठोरता करो, तो फिर इसके पश्चात् चाहे तो इन पर एहसान कीजिये चाहे इनसे बदले में धन लेकर छोड़ दीजिये बात यह है, यदि अल्लाह चाहे तो उनसे अवश्य बदला लें परन्तु जिसमें तुममें से कितनों को कितने के साथ परीक्षा लें। और जो लोग अल्लाह के मार्ग में मारे जाते हैं तो उनके कर्मों को कदापि भ्रष्ट नहीं किया जायगा।

इस आयत में निम्नोक्त बातों की आज्ञायें हैं—

(क) काफ़िरों से जब मुसलमान मुलाक़ात करें तो मुसलमानों को चाहिये कि उनकी गर्दनें मारें अर्थात् उन्हें क़त्ल कर डालें।

(ख) काफ़िरों पर यहां तक बलात्कार किया जाय कि समग्र शक्ति चूर चूर कर दें।

(ग) इसके पश्चात् उन्हें क़ैद करने में कठोरता की जाय।

(घ) तत्पश्चात् उन्हें चाहे तो मुफ़्त में छोड़ दिया जाय, अथवा।

(ङ) प्राण रक्षा के बदले उनसे धन लेकर उन्हें छोड़ा जाय।

कैदियों के मार डालने की विधि

इस आयत में अन्त की दो अज्ञाओं से विदित होता है कि काफिरों को सर्वथा बध करने ही की आज्ञा नहीं है, वरन उन्हें कृतज्ञ करके उन्हें यों ही छोड़ देने की भी आज्ञा है तथा मुसलमान चाहें तो उनके छोड़ने के बदले उनसे धन ले लें जिसे फ़िदिया (Ransome) कहते हैं।

परन्तु कुरान के अध्ययन करने वालों पर विदित है कि अन्त की दो बातें मुहंम्मद साहब की स्पिरिट के सर्वथा विरुद्ध थीं तथा उनके साथियों के मतानुकूल भी नहीं थीं इसी लिये ये बातें प्राचीन भाष्यकारों के दिलों में खटकने लगीं, क्योंकि हज़रत मुहम्मद तथा उनके आचरण से पता लगता है कि कैदियों को यों ही छोड़ देना या फ़िदिया लेकर छोड़ना यह इस्लामी स्पिरिट के बाहर है। यों ही छोड़ना तो तब ही हो सकता है जब कैदी मुसलमान हो जाये परन्तु धन लेकर छोड़ना तो धर्म तथा कुरान के सर्वथा विरुद्ध है तो फिर क्या किया जाय। इस आयत में तो इस की स्पष्ट आज्ञा दी गई है। सुनिये इस पर भाष्यकारों की क्या राय है।

(१) कितने उलमा का कथन है कि इस आयत में कैदी को मुफ्त छोड़ने या फ़िदिया लेने का अख्तियार दिया गया तो यह मनसूख (अमाननीय) है (मवाहिबु पृ० ५९)

(२) रहा यह प्रश्न कि कैदी कत्ल हो सकता है या नहीं ? तो इसमें कई मत हैं। किन्हीं का कथन है कि कत्ल

नहीं हो सकता है, और कितनों का कहना है कि क़त्ल हो सकता है, जैसा कि मुहम्मद साहब ने 'बद्र' के कैदियों में से नजर-बिन हारिस को और अक़िना बिन अबी मोईत को क़त्ल कर दिया।

(३) इमाम अबू हनीफा जो सुन्नत सम्प्रदाय के ४ इमामों में से प्रधान इमाम थे उनका सिद्धान्त है कि ये आज्ञायें मनसूख (अमाननीय) हैं।

(४) हसन बसरी का कथन है कि हजाज सक़फ़ी के पास कुछ कैदी लाये गये तो इसने इब्न उमर को एक कैदी दिया कि इसको क़त्ल कीजिये तो इब्ने उमर ने कहा कि हम लोगों को ऐसी आज्ञा नहीं दी गई है, क्योंकि अल्लाह ने तो कहा है कि जब चूर करदो तो कैद करने में कठोरता करो और चाहे उन्हें योंही छोड़ दो या फ़िदिया लेकर छोड़दो, इत्यादि। लैस बिन अबी समान ने कहा कि मैंने मजाहिद से वर्णन किया कि मुझे खबर पहुँची है कि इब्न अब्बास ने कहा कि कैदियों को क़त्ल करना उचित नहीं है, क्यों कि अल्लाह ने फ़िदिया लेने या मुफ्त छोड़ने की आज्ञा दी है। इस पर मजाहिद ने उत्तर दिया, कि तू इस रवायत (कथा) पर कुछ विश्वास मत कर और मैंने रसुलुल्लाहै सल्लल्लाहो अलेहे व सल्लम के मित्रों को पाया वे सब इसे अस्वीकार करते थे और उनका प्रत्येक साथी कहता था कि यह आज्ञा मनसूख (अमाननीय) है और आज्ञा केवल उस समय के लिये था जब रसूलिलाह सलल हो अलेहे वसल्लम

और मूर्तिपूजकों के बीच में सुलह था। अब यह आज्ञा नहीं है, अलाह ताला कहता है:—

"ओक़तोलुल मुशरेक़ीन" इत्यादि।

अर्थात् "मूर्त्तिपूजकों को जहाँ पाओ क़त्ल करो इसलिये यदि वे गिरिफ्तार हाथ आवें तो भी क़त्ल कर दिये जावें फिर यदि वे कैदी अरब के मूर्त्तिपूजकों में से हों तो इनके सिवाय इस्लाम को कुछ स्वीकार नहीं है जब वह इस्लाम से इनकार करे तो क़त्ल किया जायगा और यदि अरब के अतिरिक्त अजम (पार्सी) आदि जाति का हो तो मुसलमानों को अख़तियार है चाहे इनको मुफ्त छोड़ें या फ़िदिया (Ransome) लेले वा गर्दन मार दें वा गुलाम बनावें और यदि मुसलमान हो जावें तो काफ़िरों को फ़िदिया लेकर न दिया जावे...इत्यादि।

(मवाहिबु० खण्ड २६ पृ० ६०)

काफ़िर वा मूर्त्तिपूजक कैदी को मुफ्त में छोड़ने की बात तो तबही हो सकती है कि जब वह मुसलमान हो जावे परन्तु फ़िदिया लेकर छोड़ने का जो इस आयत में वर्णन है उसे मुसलमान मनसूख समझते हैं कारण कि एक बार हज़रतमोहम्मद ने बदर की लड़ाई के क़ैदियों को फ़िदिया लेकर छोड़ दिया था तो इसके लिये उन्हें पश्चात्ताप करना पड़ा था जिसकी कथा इस प्रकार है:—

"हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद ने एक कथा इस प्रकार वर्णन की है कि बदरकी लड़ाई ख़तम होने पर आं हज़रत सलम

(अर्थात् मुहम्मद साहब) ने अपने साथियों से परामर्श किया कि कैदियों के विषय में क्या कहते हो तो अबू बकर ने खड़े होकर निवेदन किया कि रसुलिल्लाह ये आपकी जाति के लोग हैं इनको बाकी रखिये और पश्चात्ताप कराइये शायद अल्लाह-ताला इनके-पश्चात्ताप को स्वीकार करले। और उमर ने निवेदन किया कि 'इन्हीं ने आपको झुठलाया और मक्का से निकाला। आप आज्ञा दें कि मैं इनकी गर्दनें मार दूँ। अब्दुल्लाह बिन रवाहा ने कहा कि 'हे रसूलिल्लाह ! ये लोग इस योग्य हैं कि जंगल में बहुत लकड़ियाँ हैं उन लकड़ियों को एकत्र करके इसमें इनको जला दिया जाय।" इस पर मुहम्मद साहब चुप रहे और भीतर चले गये और लोग परस्पर विरुद्ध राय के हो गये। किन्हीं ने कहा कि हम अबूबकर के कथन को मानेंगे कितने उमर के पक्ष में हो गये और बहुतों ने अब्दुल्लाह बिन रवाहा का कथन पसन्द किया। फिर मुहम्मद साहेब बाहर आये और कहा कि अल्लाहताला कितने दिलों को नर्म करता है यहां तक कि दूध से अधिक कोमल होते हैं और कितने दिलों को कठोर करता है कि पत्थर से अधिक कठोर होते हैं......तुम लोग इस समय निर्धन हो। इन कैदियों में से कोई छोड़ा न जावेगा, यहां तक कि अपने फिदिया (Ransom money) देवें या इसकी गर्दन मारी जावे। इब्न मसऊद कहते हैं कि मैंने जबान लड़ाकर कहा कि सिवाय सुहैल बिन बैजा के, कि वह इसलाम का जिक्र करता था

('अर्थात् उसे न मारा जावे)। मोहम्मद साहब चुप हो गये और मुझे उस रोज ऐसा भय हुआ कि कहीं मुझ पर आसमान से पत्थर न बरसें। इसी भय में था कि मुहम्मद साहब ने आज्ञा दी कि सिवाय सुहेल बिन बैजा के, अर्थात् (इसे योंही छोड़ दिया जाय)। फिर इन सब कैदियों को फिदिया (Ransom money) लेकर उन्हें छोड़ दिया गया कि भविष्यत् में मुसलमानों से न लड़ें। और इब्न उमर का कथन है कि बदर के काफ़िरों के क़ैदियों में अब्दुल मुत्तलिब के पुत्र अबास क़ैद होकर आये तो मुहम्मद साहब के मदीना नगर के सहायकों ने अबास को धमकाया कि तुझको क़त्ल कर देंगे और यह संवाद मुहम्मद साहब को मिला तो आपने कहा कि मैं रात को अपने चचा अबास के कारण नहीं सोया और मदीना के सहायकों का कथन है कि अबास को क़त्ल कर डालें तो उमर ने कहा कि मैं अबास को ले आऊं। आपने फ़रमाया अच्छा। फिर उमर वहां से चलकर मदीना के सहायकों के पास पहुंचे और कहा कि अबास को छोड़ दो। उन्होंने कहा कि कदापि नहीं। क्यों छोड़ें? उमर ने कहा कि यदि इसमें मुहम्मद साहब की इच्छा हो तो, सहायकों ने उत्तर दिया कि यदि ऐसा है तो ले जाओ फिर उमरने अबास को लेकर कहा कि हे अबास तुम मुसलमान हो जाओ परमात्मा की शपथ है कि तुम्हारा मुसलमान होना मुझे अपने पिता खताब के मुसलमान होने से अधिक प्रिय है, क्योंकि मैंने देखा कि मुहम्मद साहब को तुम्हारा मुस-

लमान होना भला मालूम होता है...इत्यादि। और दूसरी कथा में है कि दूसरे दिन हज़रत उमर मुहम्मद साहब की सेवा में उपस्थित हुए तो देखा कि आप और अबूबक्र रोते हैं। (इस पर उमर ने) निवेदन किया कि हे रसूलिल्लाह! आप और ये क्यों रोते हैं, मुझे भी जनाइये। इस पर मुहम्मद साहब ने उत्तर दिया कि मैं तेरे साथियों के लिये रोता हूं कि इन्होंने फ़िदिया लेना अख़्तियार कर लिया और मुझ पर इनके हक़ में मोवाख़िज़ा (उत्तरदायित्व) इस वृक्ष से भी अधिक निकट उपस्थित किया गया है अर्थात् आगामी वर्ष इस फ़िदिया के बदले दुःख में निमग्न होकर मार डाले जायेंगे इत्यादि।

(मवाहिबु०, खण्ड १० पृ० ३५, ३६) उपर्युक्त कथा से ज्ञात होता है कि क़ैदियों से धन ले कर छोड़ना मुहम्मद साहब ने उचित नहीं समझा—उमर आदि साथियों ने तो पहिले ही समझाया था, परन्तु हजरत ने उनकी बातों को न माना और वे अपने श्वसुर अबूबक्र के कहने पर चले गये और उन क़ैदियों को धन लेकर छोड़ दिया और धन लेने का कारण भी हजरत ने स्वयं बतला दिया कि अभी वे निर्धन हैं, अतः इनसे धन लेने से मालदार हो जायेंगे। बात भी ठीक है हज़रत को लूट मार करने के लिये सर्वदा अपने साथ एक लड़ाका दल रखना होता था जिनके सञ्चालन के लिये धन की आवश्यकता थी, जिसके लिये बदर के युद्ध में क़ैदियों को छोड़कर उनसे वसूल किया गया। परन्तु वे क़ैदी ज्यों के त्यों काफ़िर बने रहे और

अपने जुत्थ में जा मिले जिससे काफ़िरों की शक्ति बढ़ गई और उन्होंने दलबल सहित इनपर ओहोद में आक्रमण किया। जिसमें हज़रत की हार हुई और सत्तर साथी क़त्ल कर दिये गये। हज़रत ने धन लेकर क़ैदियों को छोड़ तो दिया परन्तु जब यह विचार किया कि इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा विपक्षी ओर पकड़ जायेंगे तो पश्चात्ताप करने लगे और अपने श्वसुर अबूबक्र के साथ मिलकर रोने धोने में लग गये और झट अल्लाह मियां के यहां से आयतें उतार लाये जो इस प्रकार हैं:—

"मा कानले नबीयन् अंय्यकुन लहु असरा हत्ता युस खेन फ़ील अर्जे तोरीदून अर्जद्दुनियाँ वऽललाहो योरी दुऽलआ खेरत वऽल लाहो अज़ीज़ुन हकीम। लौला किताबुम्मिनऽल लाहे सबक लमस्सकुम फ़ीमा अख़ुज़तुम अज़ाबुन अज़ीम। फ़कोलू मिम्मा ग़निमतुम हालालन तैय्यबन, वऽत्तकुऽल लाह इन्नऽनललाह गफ़ूरुर्रहीम (सूरये अनफ़ाल रोकु ९)।

अर्थात् "नबी के लिये यह योग्य नहीं था कि उसके लिये कैदी जावें यहाँ तक कि पृथ्वी में रक्तपात करें। तुम दुनिया की सम्पत्ति चाहते हो और अल्लाह परलोक को चाहता है और अल्लाह महान ज्ञान सम्पन्न है। और प्रथम व्यतीत हुआ वह यदि अल्लाह की ओर से लिखा न होता, तो तुमने जो (सम्पत्ति लिया था उसके बदले महती यातना होती। इसी लिये तुम उस (धन) में से खाओ जो तुमने लूट मार कर प्राप्त किया है।

(जो) हलाल और पवित्र है और अल्लाह से डरो निश्चय अल्लाह क्षमाशील और दयालु है।"

ऊपर जिस शब्द का अर्थ हमने "रक्तपात करें" किया है यह अरबी में 'युसखेन' है जिसका धातु 'इसखन्' है। इस धातु का अर्थ गहरे घाव देकर कत्ल करना है। अतः आयत का स्पष्टीकरण यह हुआ कि मुहम्मद साहब को कैदी रखना वा उन्हें छोड़ना न चाहिये था किन्तु उन्हें गहरे घाव के साथ क़त्ल करना उचित था। मवाहिब में इसके भाष्य में लिखा है—

"इस आज्ञा का तात्पर्य यह है कि काफिरों को कत्ल कर डालना पुण्य है सम्पत्ति प्राप्त करने की इच्छा से कैद करना उचित नहीं। और मजाहिद का कथन है कि—

"अल्लाह, ताला ने इस आयत में जतला दिया कि बद्र के युद्ध के दिवस मूर्त्ति पूजकों को कत्ल कर डालना इन्हें कैद करके फिदिया लेने की अपेक्षा उत्तम था।"

विज्ञ पाठको! हमने जो पहले उद्धृत की हुई आयतों का इतना विस्तार किया है उससे मेरा उद्देश्य केवल यही है कि आपको भले प्रकार विदित हो जावे कि मुहम्मद साहब की कैसी स्पिरिट थी। कुरान में जो कहीं कहीं पर युद्ध के कैदियों से कोमल वर्त्ताव का विधान भी है वह हज़रत की इच्छा के सर्वथा विरुद्ध है और अल्लाह मियाँ ने भी मौका महल देख कर उस आज्ञा को अमाननीय ठहरा कर दूसरे प्रकार की आज्ञा दी। दूसरे शब्दों में यह कहना अनुचित न होगा कि जिस जिस समय

हजरत मुहम्मद ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए जिन जिन कामों का करना उचित समझा था जिन जिन कामों को वह कर बैठते थे, अल्लाह मियाँ भी उसकी पुष्टि में वैसी आयतें आसमान से जबराईल फरिश्ते के द्वारा उतारा करते थे जिसमें प्यारे नबी के विचार तथा उसके किसी आचरण को लोग असङ्गत न समझें परन्तु अल्लाह मियाँ को यह पता नहीं था कि बराबर अपनी आज्ञाओं को उलट फेर करके उन्हें अमाननीय ठहराते रहने पर लोगों के स्वयं अल्लाह मियाँ की बुद्धि की चंचलता तथा अस्थिरता पर अविश्वास हो जायगा और अल्लाह मियाँ एक साधारण दर्जे के मनुष्य समझे जायंगे। खैर हमें क्या ? अल्लाह जाने और उसका काम जाने।

मुहम्मद साहब के साथियों की जहादी स्पिरिट

रक्तपात करने की स्पिरिट ने जितना हज़रत मोहम्मद को उत्तेजित कर रक्खा था उनसे कहीं अधिक उनके साथी रक्त-पात के लिये पागल बन रहे थे, हज़रत काफिरों को मुसलमान बनाने का अवसर भी प्रदान करते थे, मुसलमान न होने पर कत्ल करते थे, परन्तु कतिपय साथियों ने तो जहाद की स्पिरिट अपने आप में यहाँ तक कूट कूट करके भरी थी कि विपक्षियों को अवसर तक नहीं देते थे कि वे विचार करके मुसलमान हो जाय और यदि विपक्षी ने मुसलमान होना भी स्वीकार किया और स्पष्ट शब्दों में न कह कर धीमे से कहा तो भी उसे

क़त्ल कर देते थे। सुनिये इस पर एक दो कथायें प्रमाणित ग्रन्थों से उद्धृत किए देता हूँ—

(१) "लम्मा मर्द नफरुन मिनल साहाबते वे रजोलिन मिद् वनी सली मिन व होव यसूको ग़नमन् फसल्लम अलेहिम फकालू मा सल्लम अलै ना इल्ला तक़ीयतन फक़्तूलूहोवऽस्ताव ग़नमहू"

(मवाहिब० खण्ड ५—पृ० १६०

अर्थात् "जब हज़रत मुहम्मद् के साथियों में से कई पुरुष सलीम वंशीय एक पुरुष के पास जा रहे थे जो आपकी बक-रियाँ हांक लिये जाता था उसने इनको सलाम किया तो साथी बोले कि इसने हम को झूठे सलाम किया, अर्थात् अपने बचाव के लिये सलाम करके अपने को मुसलमान होना प्रकट किया तो इस पुरुष को इन साथियों ने क़त्ल कर डाला और इसकी बकरियाँ लूट लीं।"

इस कथा से हज़रत के साथियों के जंगी स्पिरिट का पता लगता है। बेचारे एक बकरी चराने वाले निहत्थे पुरुष पर जत्थे के जत्थे टूट पड़े और उसके इस्लाम प्रकट करने पर भी उसे क़त्ल कर डाला और बकरियाँ लूट लीं। इससे बढ़ कर वीरता का कार्य्य वीरों के इतिहास में और क्या हो सकता है? यदि साथियों को उसके सलाम करने पर भी सन्देह ही हो गया था कि स्यात् उसने जान बचाने के लिये मिथ्या ही इस्लाम प्रकट किया है तो उसे पकड़ लेते और उससे पूछकर निश्चय

कर लेते, बेचारा था तो अकेला कर ही क्या सकता था पर जहादी स्पिरिट ने उन वीरों को आज्ञा न दी कि एक निरस्त्र बकरी चराने वाले गंवार से यह पूछने तक का कष्ट सहन करते। सुनिये एक पवित्र कथा और सुनाते हैं:—

दर होज़ूरे जनाब पैग़म्बरस ल् ल ल् लाहो अलैहे वसल लम् हमी खालिद बिनऽलवलीद सहारा अज़ मुसलमान मुफ्त बशुवहये इतहाद कुशतरबूद आँ हजरत असलन मोतरिज अन-शुद चुनान चेब इजमाय अहले सेयर व तवारीख़ साबित अस्त किस्से अश आँ के जनाब पैगम्बर खालिद राबर लशकरे अमीर करदा फ़रिश्ता दन्द व अबर कोमें ताब्त व आँहा इस्लाम आवर्दा बूदन्द लाकिन हजोज कवायंद इस्लाम राढुरुन्त नदानिश्ता दर वक्ते के मशग़ूल बलत्क आँहा शुदन्द दर मोकाम इजहारे इस्लाम ई कलमा अजिवाने शान बर आमद के (सबा-ऽना सबाऽना) याने बेदीन शुदेम बेदीन शुदेम मुराद आक अजीद ने कदी में खुद तोबा कर देम व व इस्लामम दर आदेम खायिद व कुश तने आँहा अमर फरमूद—इत्यादि।

(तहिफ़ये असना अशरिया पृ० २६४)

अर्थात् हज़रत मुहम्मद के समय में लवलीद के बेटे ख़ालिद ने सैकड़ों मुसलमानों को इस्लाम परित्याग करने के सन्देह पर कत्ल कर डाला था और मुहम्मद साहब ने इस पर उस खालिद को कुछ कहा सुनी न की जैसा कि समग्र इति-हास लेखकों का इस पर एकमत है जिससे यह प्रमाणित होता

है। उसकी कथा इस प्रकार है कि पैग़म्बर साहब ने एक सेना का ख़ालिद को अध्यक्ष बनाकर भेजा था। उस (ख़ालिद) ने एक जाति पर आक्रमण किया जो पहिले मुसलमान हो चुकी थी, किन्तु अभी इसलाम के समस्त नियमों का अच्छी प्रकार नहीं जानती थी। जिस समय (खालिद के लोग) उन के क़त्ल करने में निमग्न थे तो उनकी जिह्वा से सलाम प्रकट करने के लिये यह वाक्य निकल पड़ाः—

"सबाऽना सबाऽना"

अर्थात् "हमने धर्म परित्याग किया हमने धर्म परित्याग किया' इसका उद्देश्य यह कि अपने पुराने धर्म को परित्याग किया और इसलाम में सम्मिलत हुए इस पर खालिद ने उन सबको कतल करने की आज्ञा दे दी।"

इस कथा से प्रकट है कि खालिद जहादी स्पिरिट में इतना पागल हो गया था कि उन बेचारों के वाक्य को सुनकर उसके तात्पर्य समझने तक का कष्ट सहन करना नहीं चाहता था। शोक ! कि जहादी स्पिरिट ने सहधर्मियों का रक्तपात भी एक सहधर्मी के हाथ से कराया और हजरत मुहम्मद साहब ने ख़ालिद को इस अन्याय के लिये कुछ नहीं कहा और यह इनके समय में सेनाध्यक्ष के पद पर नियुक्त था। हज़रत अबूबक्र के जमाने में भी इन महाशय ने इसलाम का ज़हादी शान के लायक एक महत्वपूर्ण पवित्र कर्म करके अपने मुसलमान होने का परिचय दिया था जिस पर खलीफा अबूबक्र ने उसे कुछ नहीं

कहा, हाँ शीआ सम्प्रदाय के मुसलमानों ने इस पर आवाज उठाई पर सुन्नियों ने कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया (देखिये तोहफये असना अशरिया पृ० १६२)

"मालिक बिन नवीरा जने जमीलादाश्त खालिद बिन अल-वलीद के अमीरुल उमराय अबूबक्र बूद बतमये अजदवाजश मालिक रा के मर्द मुसलमान बूद बकुश्त बहमां शबजने ऊराब हबालये निकाह दर आवुरदा मोजा में अतः कर्द। व ताजमान इनकजाय इद्दत कि चहार माह व दह राजस्त तवक्कुफ न कर्द हालां कि जेनेवा के शुद जौरा के निकाह दर असनाय इद्दत दुरुस्त नीस्त व अबूबक्र सद्दीक न बर खालिद हद जेना जद व न अज़वे कसास गिरिफ्त हालां के इस्तीकाय कसासब इजराय हद बर अबूबक्र वाजिद बूद इत्यादि"

अर्थात् "नवीरा के बेटे मालिक की धर्मपत्नी बड़ी सुन्दरी थी। वलीद का पुत्र खालिद ने जो अबूबक्र का प्रधान सेनाध्यक्ष था उसकी धर्मपत्नी के लोभ से मालिक को, जो मुसलमान पुरुष था, कत्ल कर डाला और उसी रात उस स्त्री के साथ निकाह भी कर लिया और प्रसंग भी किया। और पति के मर जाने पर स्त्रियों को ४ महीने दस दिन तक जो प्रतीक्षा करने की विधि है; खालिद तब तक भी नहीं ठहरा, अतः व्यभिचार हुआ क्योंकि इस प्रतीक्षा काल में निकाह करना उचित नहीं है और अबूबक्र ने न तो खालिद को व्यभिचार करने ही का दण्ड दिया और न मालिक के खून का बदला लिया, हालां

कि खून का बदला लेना तथा व्यभिचार के लिए दण्ड देना अबूबक्र को उचित रहा"।

विज्ञ पाठको! महान पुरुषों के कार्य्य भी महान ही हुआ करते हैं! ऐसे पवित्र कार्य्य करने वाले महाशय खलीफा के विश्वासपात्र न ठहरें तो और कौन ठहर सकता है और यदि खालिद जैसे मुसलमानों की तलवारों से दीन इसलाम का जगत में प्रचार हुआ हो तो इसलाम के लिए इससे बढ़कर और क्या यश की बात हो सकती है!

मुसलमान सूफ़ियों की जहादी स्पिरिट

खालिद आदि पुरुष जो सेना नायक थे उन्होंने जो क़त्ल करने में कोई विचार नहीं किया उसे इसलामी जहादी सिद्धान्त को सामने रखते हुए कोई आश्चर्य का कारण नहीं समझ सकते हैं। हमने पहिले एक हदीस उद्धृत की है जिसका आशय है कि जो पुरुष जीवन में बिना जहाद किये हुए मर जाता है उसकी मृत्यु मानो इसलाम के विरोध में हुई इत्यादि। अतः क्या फौजी मुसलमान तथा क्या व्यापारी व साधारण मुसलमान सब के सब मानवी खून के इतने प्यासे हो गये थे कि अपने जीवन में किसी काफिर को मार डलना परम कर्तव्य समझते थे। इसमें बड़ा पुण्य मानते थे। क्योंकि कुरान और हदीस की ऐसी ही शिक्षा है। इस ज़हादी तालीम ने लोगों को इतनी दूर तक पागल बना दिया था कि मुसलमान फकीर अर्थात् संन्यास आश्रम के पुरुष भी जिनका काम ईश्वर का ध्यान, चिन्तन

करना था काफ़िरों के खून के प्यासे हो गये थे। स्वयं तो उनमें युद्ध करने की शक्ति नहीं थी कि तलवार लेकर काफ़िरों की सेना के साथ युद्ध करने को निकल पड़ें अतः ऐसी दशा में जहां कहीं मुसलमानी सैनिकों के हाथ कोई काफ़िर गिरफ्तार होता था उस बेचारे निहत्थे पुरुष के गलेपर यह फकीर (संन्यासी) छुरा चला कर अपने सच्चे मुसलमान होने के भाव का परिचय देते। इसी प्रकार के एक फकीर की कथा मौ० जलालुद्दीन रूमी ने अपनी पुस्तक मसनवी मौलाना रूम में वर्णन की है जो इस प्रकार है:—

(देखो मसनवी रूमी, ५ म खण्ड)

रफ़्त यह सूफी व लश्कर दर गज़ा। नागहां आमद क़तारी को वगा॥ जंगहा कर्दा मुज़फ्फर आमदन्द। बाज़ गश्ता वा ग़नायम सूद मन्द॥ अर्मग़ा दादन्द कय सूफ़ा तुनीज़। ऊबरूँ अन्दाख़ नस्तद, हेच चीज़। पस बगुफ़तन्दश के खशमीने चेरा। गुफ्त मन महरूम मान्दम् अज़ ग़ज़ा। जो तल तुफ़ हेच सूफी खुश न शुद। कू मेयान ग़ज़ा ख़ञ्जर कश न शुद॥ पस बगुफ़त्तन्दशके आवर्देम असीर। आं यके रावह्ने कुशतन तू बेगीर॥ सरबबुरेश ता तु हम ग़ाज़ी शवी। अन्दके खुश गश्त सूफ़ी दिल क़वी॥ बुर्द सूफ़ा आं आं असीरे बस्ता रा। दर पसे खिरगह्के शारद कू ग़ज़ा॥ देर मान्द आं सूफी आं जावा असीर। क़ौम गुफ़तन्द ऐ अजब चूं शुद फ़कीर। काफ़िरे बस्ता दो दस्त ऊ कुशतनीस्ता बिस्मिलशरा मौजिबे ताखी चीस्त। रफ्त आं यक

दर तफ हू हुस दर पयश। दाद क़ाफ़िर रा वा वालायवयश। हमची नर वालाय मादाआँ असीर हमची शेरे खुफ़्ता वालाय फ़क़ीर ॥ दस्तोपा वस्ता हमी ख़ ईद ऊ। अज सरे उस्तेज़ा सूफी रा गोलूश॥ गिव्र मा खाईद वा दन्दाँ गोलूश॥ सूफी उफ्तादा वज़ेरो रफ्त: होश॥ दस्ता वस्ता गिव्र हमचो गुर्वे ये। खिस्ता कर्दा हल्क ऊवे हर्कये॥ नीम कुश्तश कर्द वा दन्दा असीर। रीशऊ पुरखूं ज़ो हल्के आँ फ़क़ीर॥..........
....

ग़ाज़ियाँ कुश्तन्द काफिर राव तेग़। हमदराँ साअत जे हमियत वेदरेग़॥ वर रुखे सूफी ज़दन्द आवो गुलाव। ता वहो आयद जे वेहोशी व ख्वाव। चूं वख्वेश आयद वदीद आँ क़ामरा पस्त्र पुर्सी दन्द चूं वुद माजरा॥ अल्लह अल्लह ईं चे हालस्त ऐ अज़ीज ईं चुनी वेहोश गश्ती अज़ जचीज॥ अज् असीरे नीम कुश्ता वस्ता दस्त्। ईं चुनीं वेहोश उफतादी व पस्त्॥ गुफ्त चूं कर दे सरश्च कर्दम वख़शम। तुर्फा दरमन् विनगिरीद आँ शोख चश्म। चश्म् रा वा कर्द पहन ऊ सूय मन। चश्म् गर्दानीद शुद् होशम्‌जेतन॥ गर्दिशे चश्मश मेरा लश्कर न मूद। मीन तानम गुफ्त चू पुर होल वूद॥ किस्साकोतह कुन् कज़ाँ चश्मईं चुनो। तफ्तम अज़ खुद ऊ फ़तादम् वर ज़मी। कौम गुफ्तन शब पैकारो न वर्द। वा चुनाँ ज़ोहरा के तु दा रोम गर्द॥ गिर्दे मत -चस्त गर्दा अन्दरख़ान काह। ता दिगर रूसवान नर्दी दरसिपाह।

—————इत्यादि।

भाषानुवादः—

एक सूफी (साधु) युद्ध में एक सेना के निकट गया, अचानक युद्ध के घोर नाद आने लगे। वह सेना युद्ध से विजयी होकर आ रही थी, लाभ जनक लूट के माल के साथ वापिस आ रही थी। उन्होंने उस सूफी को भी कुछ तोहफ़ा दिया (परन्तु) सूफी ने सब फेंक दिया और कुछ नहीं लिया। इस पर उन्होंने कहा "आप हमसे क्रुद्ध क्यों हैं" ? (सूफी ने) उत्तर दिया कि मैं युद्ध करने से वञ्चित् रहा। उस कृपा से सूफी तनिक भी प्रसन्न नहीं हुआ। क्योंकि वह युद्ध में खञ्जर कटार खींचने वाला नहीं हुआ। इस पर उन्होंने कहा कि हम अनेक कैदी लाये हैं आप उनमें से एक को कत्ल करने के लिये लेलें। आप उसका शिरच्छेदन कर दें जिसमें आप योद्धा बन जायं, इस बात से सूफी का हृदय थोड़ा प्रसन्न हुआ। सूफी उस बंधे हुए कैदी को ले गया। खेमें के पीछे की ओर कि उससे युद्ध करे। वहाँ उस कैदी के साथ सूफी देर तक रह गया। लोगों ने कहा कि इस फ़कीर को क्या हो गया। काफिर के तो दोनों हाथ बंधे हुए हैं और वध्य है उसके मार डालने में इतना विलम्ब क्यों हुआ। उनमें से एक पुरुष अनुसन्धान में उसके पीछे गया और (उस) काफिर को उस (सूफी) के बदन पर देखा इसी प्रकार वह कैदी सिंह के सदृश फ़कीर के शरीर पर पड़ा था। हाथ पाँव तो बँधे थे पर तो भी वह चबा रहा था युद्ध की इच्छा से उस सूफी के गले को। (वह)

अग्निपूजक दांतों से उसके गले को नोच रहा था सूफी उसके नीचे पड़ा था और वह बेहोश था। उस अग्निपूजक का हाथ तो बँधा था तो भी बिल्ली के समान उसके कण्ठ को उस कैदी ने दांतों से चबाकर उसको अधमरा कर दिया। फकीर के कण्ठ (के रक्त) से उसकी दाढ़ी रक्तपूर्ण थी। इस पर लड़न्तियों ने उस काफिर को तलवार से मार डाला। ठीक उसी समय उसकी सहायता में निसंकोच होकर सूफी के मुख पर पानी तथा गुलाब जल छिड़का जिससे उसे बेहोशी और निद्रा से होश आ जाय। जब (सूफी) अपने आपे में हुआ तो उसने जत्थे को देखा इस पर उन्होंने पूछा—"(महाशय) क्या बात हुई" शिव! शिव! हे प्रिय, आपको यह क्या दशा है? किस वस्तु से आप इतने बेहोश हो गये? एक अधमरे कैदी से जिसके हाथ बन्धे थे आप इतने बेहोश हो गये!" सूफी ने कहा—"जब क्रुद्ध होकर मैंने उसका माथा काटने की इच्छा की उस निर्भय आँख वाले काफिर ने मेरी ओर आश्चर्य पूर्ण दृष्टि से देखकर मेरी ओर आँख खोलीं और आँख को फिराया इस पर मेरे शरीर से होश जाता रहा। उसकी आँख का फिराना मुझे एक सेना प्रतीत होता था। उसने कहा कि मैं नहीं जानता कि कितना भयपूर्ण रहा। संक्षेप कथा का यह है कि उसकी ऐसी आँखों से मैं अपने आपे से जाता रहा और भूमि पर गिर पड़ा।"

(सेना के) लोगों ने कहा कि युद्ध और लड़ाई में इस कलेजे के साथ जो आप रखते हैं मत जाया कीजिये।

रसोइयों तथा मठों के चारों ओर घूमा कीजिये जिसमें दूसरी बार सेना के निकट आप अपमानित न हों।

यह तो हुई मुसलमान सूफी की कथा जिसे मुसलमान सूफियों के पीर मौलाना रूमी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में वर्णन की है इस पुस्तक की प्रामाणिकता के विषय में ही कहा गया है कि:—

"मसनवीये मोलवीये मानवी हस्त कुरआं दर जबाने पहलवी।

अर्थात् मसनवी मौलाना रूम की पुस्तक फार्सी भाषा में कुरान है।

सिपाहियों ने जो सूफी को उपदेश दिया वह बहुत ही उचित था, क्योंकि सूफी को चाहिये था कि परमात्मा के चिन्तन तथा कुरान के स्वाध्याय में एकान्त जीवन व्यतीत किया करते परन्तु बहिश्त की रहनेवाली हूरों की स्मृति ने उसे लाचार किया कि गाजी (योद्धा) बन कर शीघ्र उनसे जा मिले और सच्चे मुसलमानों की स्पिरिट को दिखला दे। बेचारे का दोष ही क्या था। न हजरत मुहम्मद अपने अनुयायियों को काफिरों के कत्ल करने के लिये उसकाते, न सूफी के दिल में ऐसे भाव उत्पन्न होते।

इस कथा के लिखने से मेरा अभिप्राय यही है कि हज़रत मुहम्मद साहब की दी हुई जहादी स्पिरिट का नकशा आपके सामने रख दूँ। इसलामी साहित्य में ऐसी ऐसी कथाओं की विद्यमानता में क्या मौलवी मुहम्मद अली आदि मुसलमानों को

शोभा देता है कि वह ये लिख मारें कि काफिरों को कत्ल करने की आज्ञाएँ इसलाम में नहीं हैं तथा जहाद तो राजनैतिक युद्ध है। भला बतलाइये तो सही कि किस राजनैतिक युद्ध में सम्मिलित होने के लिये उपर्युक्त कथा के सूफी महाशय आये हुये थे? उनके सम्मिलित न हुए बिना किस देश पर शत्रुओं का सिक्का जम रहा था? पाठक घबराइये नहीं—

इन्तदाये इश्क है रोता है क्या।
आगे आगे देखिये होता है क्या॥

एक हाथ में कुरान और दूसरे में तलवार

जिन मौलवी साहबों ने अपने दीन की शान रखने के लिये जहाद को राजनैतिक युद्ध सिद्ध करने की चेष्टा की है उन्होंने जान बूझ कर संसार को तथा अपने आपको धोखा दिया है। ऐसे मौलवी कहा करते हैं कि कुरेश जाति के लोगों ने श्री हज़रत को बहुत कष्ट दिया, अतः लाचारी श्री हज़रत को युद्ध करने के लिये विवश होना पड़ा था। हम इसे स्वीकार करते हैं कि लोगों ने इन्हें कष्ट दिया होगा। जिसके कारण इन्हें विवश होकर लड़ना पड़ा हो। परन्तु कुरान, हदीस तथा इतिहास के अध्ययन से पता लगता है कि यद्यपि प्रथम हज़रत को शत्रुओं के लड़ने के लिये विवश होना पड़ा हो परन्तु उसके पश्चात् आसपास की जातियों पर धर्म प्रचारार्थ सर्वदा सेना भेजते रहे। धर्म प्रचार करना उत्तम है परन्तु, प्रचार के लिये प्रचारक जाना चाहिये न कि एक सेनानायक दल बल के साथ

जाकर किसी निर्बल जाति को तलवार के प्रहार से मुसलमान बना ले, अथवा न बनने पर उनका रक्तपात करे। हजरत पर कुछ अपनी ओर से कलङ्क नहीं लगाता अपने पक्ष की सिद्धि में प्रामाणिक ग्रन्थों के लेखों को उद्धृत करता हूं जिसकी प्रामाणिकता में मुसलमानों को भी सन्देह नहीं। ऊपर के लेख से तो हज़रत की स्पिरिट विदित हो गई होगी तथा उनके अनुयायियों की करतूत भी आपके सामने रख दी गयी। उनके प्रचार का ढङ्ग जो था वह संसार में एक कहावत बन गया है जिसे प्रायः शिक्षित जनता जानती है Sword in the one hand and Quran in the other अर्थात् "एक हाथ में तलवार तथा दूसरे हाथ में कुरान", इस कहावत को कुछ मुसलमान से इतर धर्मावलम्बियों ने रचना नही की है। परन्तु स्वयं बड़े बड़े मुसलमान आचार्यों ने गर्वपूर्वक अपने पैगम्बर की शान में इस प्रकार के वाक्य लिखे हैं। देखिए प्रसिद्ध कवि नेज़ामी गञ्जवी मुहम्मद साहब का गुण वर्णन करते हुए क्या कहते हैं।

मोहीते चे गोयम्बी वरिन्दा मेग़। बयक दस्त गौहर बयक दस्त तेग़॥ बगौहर जहां हो ,पया रास्ता। व तेग अज़ जहां दादो दीं ख्वास्ता—

अर्थात् (मुहम्मद साहब एक महासागर थे) मैं उस महासागर के विषय में क्या कहूं जो बरसने वाले मेघ के सदृश था।

(जिसके) एक हाथ में तो गौहर (अर्थात् कुरान) और एक हाथ में तलवार (था)।

गौहर (कुरान) से तो उन्होंने संसार को सँवारा । (तथा) तलवार से न्याय तथा धर्म (का प्रचार) संसार में चाहा ।

तयू वंशियों को मुसलमान बनाने के लिए सेना भेजना

'बयक दस्त गौहर बयक दस्त तेग़' जो हजरत नेज़ामी गञ्जवी की उक्ति है वह कहावत बन गई; जिसका अंग्रेजी अनुवाद है Sword in the one hand and Quran in the other अतः इस प्रकार का कलङ्क किसी इतर धर्मावलम्बी ने मुहम्मद साहब पर नहीं लगाया था । इस कहावत की रचना की जिम्मेदारी स्वयं मुसलमान धर्माचार्यों पर है । और उन बेचारों का भी दोष क्या था ? सच्ची घटना को वर्णन कर दिया और इसके वर्णन करने में वे अपने दीन का गौरव समझते थे । निर्बल जातियों पर तलवार के साथ बलात्कार कर उन्हें मुसलमान बनने के लिये विवश किया जाता रहा इसके हम अनेक प्रमाण दे चुके हैं; इसके अतिरिक्त एक और प्रमाण उद्धृत करते हैं जिससे हज़रत मुहम्मद की उस जहादी स्पिरिट पर पूरा प्रकाश पड़ जायगा । देखिये बुलबुले शीराज़ शेख सादी साहब अपनी प्रसिद्ध पुस्तक बोस्तां के द्वितीय अध्याय में लिखते हैं—

शुनीदम् के तय दर जमाने रसूल । न कर्दन्द मन्शूरे ईमां कबूल ॥१॥ फरिस्तादृ लश्कर बशीरो नजीर । गिरिफ्तन्द अज़ एशां गरोहे असीर ॥२॥ बफर्मूद कुश्तन व शमशीरे कीं । के

नाबाक बुदंदों नापाक दीं ॥३॥ जबे गुफ्त मन दुख्तरे हातिमम् । बेख वाहन्द अज़ी नामवर हाकिमम् ॥ ४ ॥ करम कुन बजाय मनपे मोहतरम् । के मौलाय मन् बूद अहले करम ॥५॥ बफ़मीने पैगम्बर पाक राय । कुशा दन्दू जञ्जीरश अज दस्तोपाय ॥६॥ दरां कौम बाकी न हादन्द तेग । केरादन्द सैलावे खुं बेदरेग ॥७॥ बजारीब शमशीरे जन गुफ्त जन । मोर नीजबा जुमला गर्दन बेज़न ॥८॥ मरौव्वत नवीनम् रहाईजे बन्द । व तनहा व यारानम् अन्दर कमन्द ॥९॥ हमीं गुफ्त गिर्या व अखवाने तय । बसमूए रसल आमद आवाज़े वय ॥१०॥ व बखशीदो आं कौमो दीगर अता ॥ के हार्गज न कर्द असलो गौहर खता ॥११॥

भाषानुवाद

मैंने सुना कि मुहम्मद साहेब के ज़माने में हातिमताई के वंशजों ने इस ईमान की आज्ञा को अस्वीकार कर दिया (अर्थात् मुसलमान नहीं बने ॥१॥

(मुहम्मद साहेब ने उनकी ओर) एक सुसम्वाद देनेवाली तथा डरानेवाली सेना भेजी ।

(जिन्होंने) उन (तयूवंशियों) में से एक जत्थे को क़ैद कर लिया ॥ २ ॥

(मुहम्मद साहब ने) उन्हें शत्रुता की तलावर से मार डालने की आज्ञा दी । कारण कि वे निर्भय थे और अपवित्र धर्म के (माननेवाले) थे ॥३॥

(उनमें से) एक स्त्री ने कहा कि मैं हातिम की पुत्री हूँ। इस विख्यात शासक से लोग मुझे चाहले (अर्थात छोड़ लें)।

हे मान्यवर महाशय मेरे ऊपर कृपा कीजिये क्योंकि मेरा पिता (बड़ा ही) कृपालु था ॥५॥

पवित्र विचार वाले पैगम्बर की आज्ञा से (लोगों) ने उस (स्त्री) के हाथ और पाँव से जञ्जीर खोली ॥६॥

उस जाति के शेष लोगों पर उन्होंने तलवार खींच ली। इस उद्देश्य से कि निःसंकोच होकर रक्त की धारा बहावें ॥७॥

तलवार चलाने वाले से (उस) स्त्री ने कहा। "सबके साथ मेरी गर्दन भी मारिये ॥८॥

कैद से छूट जाने में मैं मरोव्वत नहीं देखती कि मैं अकेली (छूटी रहूँ) और मेरे साथी फन्दे में (बँधे रहें)" ॥९॥

रोती हुई (वह लड़की) अपने तयू वंशीय भाइयों के लिए यही कहती थी। उसकी आवाज मुहम्मद साहब के कान तक पहुँची ॥१०॥

(मुहम्मद साहब ने) उस जाति को छोड़ दिया और उस लड़की को (दूसरी वस्तु भी) प्रदान की।

(पैगम्बर ने कहा) कि मूल तत्व कभी दोष युक्त नहींहोता है।

यह तो मूल कथा हुई इस कथा में निम्नोक्त बातों का वर्णन है:—

(१) तयू वंशीय लोगों के पास पैगम्बर साहब ने मुसलमान बनने की आज्ञा भेजी थी जिस आज्ञा को उन्होंने अस्वीकार किया।

इस पर उचित तो यह था कि मुहम्मद साहब चुप रह जाते अथवा पता लगाते कि किस कारण वे मुसलमान होना नहीं चाहते, उसके अनुसार जैसा उचित समझते वैसी व्यवस्था करते। यदि उनको अपने पैतृक धर्म पर पूर्ण विश्वास था तथा इस्लाम धर्म उनके हृदय को आकर्षित करने में असमर्थ था तब तो बेचारों का कोई दोष नहीं था। और किसी विशेष धर्म पर विश्वास नहीं करने में दोष ही क्या है ! प्रत्येक मनुष्य को इस विषय में स्वतन्त्रता प्राप्त है। हाँ धर्म प्रचारक को चाहिए कि ऐसे लोगों को समझाने का यत्न करें। उनकी बुद्धि को तार्किक युक्तियों से तथा उनके हृदयों को प्रेम पूर्ण व्यवहार से अपने सिद्धान्त की ओर आकर्षित करें, इस पर भी यदि लोग न मानें तो क्या किया जाय। इस कार्य के लिये सदाचारी तथा कोमल हृदय के उपदेशक नियुक्त करने चाहिये। मुहम्मद साहब ने यह सब कुछ नहीं किया, चूंकि वे मुसलमान नहीं हुए अतः कुरानी आज्ञा के अनुसार—

(२) हज़रत ने उनके पास एक सेना प्रेरित की जिन्होंने बहिश्त का शुभ समाचार तथा दोजख का भय उन्हें दिखलाया।

इस सेना के प्रेरित करने ही से मुहम्मद साहब की धार्मिक स्पिरिट का पूरा पता लग जाता है। उनको पता था कि इस्लाम किसी की बुद्धि को अपनी ओर खींच नहीं सकता और न किसी के हृदय ही पर इसका सिक्का जम सकता है। बस

प्रचार का एक मात्र उपाय तलवार ही है। वश चलता तो आजकल के मुसलमान भी तबलीग धर्म (प्रचार) के लिये मार्ग का अवलम्बन करते !

इन फौजी आदमियों ने जाकर वहाँ क्या किया ? न कहीं व्याख्यान दिये न लेक्चर दिये और न उस जाति में छोटी छोटी पुस्तकें ही वितरण कीं वरन्

(३) तगृ वंशियों में से एक जत्थे को तलवार का भय दिखला कर कैद कर लिया। बहुत अच्छा किया। परन्तु उन्हें एक बार अवसर तो दिया जाता कि वे इस्लाम धर्म के सिद्धान्त को विचारें पर जनाबी स्पिरिट ने इजाजत नहीं दी।

(४) मुहम्मद साहेब ने इन्हें क़त्ल करने की आज्ञा देदी क्योंकि उनका धर्म अपवित्र था और वे निर्भय थे।

बात तो ठीक ही है, इस्लाम के सिवाय संसार के सब धर्म अपवित्र ठहरे ! क़ुरान की भी यही आज्ञा है।

'व मन व बनगे गैर इस्लाम दीनन फलंय्यु क़बल मिनहो व होव फील आखरेते मिनऽल खासेरोन।' (सूरये अल इमरान)

अर्थात् इस्लाम के अतिरिक्त जो कोई किसी अन्य धर्म का अवलम्बन करता है उससे कुछ क़बूल न होगा और वह पर काल में घाटा उठाने वालों में से है।

बस उस जाति पर तलवार चलाने की आज्ञा देने में मुहम्मद साहब ने कोई अनुचित नहीं किया। पर समझदार मुसलमानों को पक्षपात रहित होकर विचारना चाहिये कि यदि

ईसाई वा यहूदी आदि मतावलम्बी भी अपनी पुस्तक के आधार पर यह मानें कि उनके धर्म के अतिरिक्त इस्लाम आदि धर्म अपवित्र हैं (जैसा कि अब भी मानते हैं) अतः इन पर तलवार चलाना चाहिये और बलात्कार पूर्वक इन्हें अपने धर्म का अनुयायी बनाना चाहिये तो क्या मुसलमानों का हृदय इस अन्याय को सहन करने के लिये राजी है ? कदापि नहीं पुनः इतर धर्मावलम्बियों पर बलात्कार करना मोहम्मद साहेब तथा उनके अनुयायियों को कहाँ तक उचित था ? इस बात का विचार स्वयं समझदार मुसलमान अपने दिलों में करें ।

सभ्य जगत का नियम है कि युद्ध आदि में भी अबलाओं पर अत्याचार नहीं किया जाता और जब वे बेचारी शांत पूर्वक अपने घरों के कारबार में निमग्न हों तो उन्हें गिरफ्तार करना तथा उन कोमलाङ्गिनियों के हाथ पांव में कठोर लोहे की जञ्जीर बांधना सो भी इसलिये कि वह अपने पैतृक धर्म को जो उन बेचारियों के रगोरेशा में प्राण के सदृश ओतप्रोत है परित्याग कर एक ऐसे धर्म को स्वीकार करने के लिये विवश हों जिसे उनके हृदय स्वीकार न करते हों, मनुष्यता की सीमा को उल्लंघन करना है । यह लड़की जिसपर यह अत्याचार किया गया कौन थी ? यमन देश के जगत विख्यात दानी तथा परहितकारी पुरुष हातिमताई की पुत्री थी । उसने रिहाई के लिये प्रार्थना तो की, परन्तु धन्य है कि इसलाम धर्म स्वीकार करने पर राज़ी नहीं हुई । अन्त में उसके पिता का नाम सुन-

कर मुहम्मद साहब ने भी आज्ञा दी कि उसके हाथ पांव से जञ्जीरें खोल दी जावें।

अपने पिता के पुण्य प्रभाव से बेचारी क़त्ल होने से बची। परन्तु हज़रत मुहम्मद ने

(६) शेष तयू वंशियों पर तलवार चलाने की आज्ञा दे दी। कारण कि वे भी अपनी बहिन के सदृश मुसलमान होना नहीं चाहते थे।

इस समय इस लड़की के समक्ष एक रोमाञ्चकारी दृश्य उपस्थित हुआ कि वह अपनी आंखों के सामने अपने समस्त भाइयों तथा सम्बन्धियों के गले पर तलवार चलती हुई देखे क्या यह दृश्य उसके लिये अपनी भावी मृत्यु से भी अधिक कलेजेको कम्पायमान करनेवाला नहीं था? क्या हातिम जैसे परोपकारी पुरुष की पुत्री की आंखें इस घोर दृश्य को अवलोकन करना सहन कर सकती थीं? कदापि नहीं; पैत्रिक रक्त ने नस नाड़ियों में जोश मारा अपनी प्राण रक्षा उसके लिये विह्वल हो गई। एक सच्ची वीर नारी के सदृश जल्लाद के पास आकर रोदन करती हुई कहने लगी—

(७) महाशय! मेरा हृदय इसे सहन नहीं कर सकता कि मैं अकेली तो अपनी जान बचा लूं और मेरे बन्धु बान्धव जञ्जीरों में जकड़े हों और इस दशामें उनके गले पर तलवार चलाई जाय और हातिम की पुत्री की आंखें इस दृश्य को देखें। अतः कृपा करके मेरी गर्दन पर भी तलवार चलाइये कि आत्मा को शान्ति प्राप्त हो।

उस लड़की के मुख से निकले हुए इन हृदय विदारक शब्दों ने मुहम्मद साहब के कठोर हृदय को भी कम्पायमान कर दिया और लज्जित होकर उस लड़की के पुण्य प्रभाव से उस जाति के गले पर तलवार चलाने से बाज रहे। मुहम्मद साहब ने वहां एक अच्छी शिक्षा प्राप्त की होगी। परन्तु शोक कि उन्होंने जीवन में उसका पालन नहीं किया, जैसा आगे के लेखों से विदित होगा।

कहाँ हैं वे मौलवी? आवें और आँखें खोलकर पढ़ें कि क्या तयूवंशियों पर फौज भेजना कोई राजनैतिक युद्ध था? क्या तयू वंशीय लोगों ने हजरत मुहम्मद के राज्य पर आक्रमण किया था? जिसके कारण हजरत उक्त कार्रवाई करने पर विवश हुए? कदापि नहीं। इसका एक ही कारण है कि मुहम्मद साहब के सिद्धान्त इतने युक्तिहीन थे जिसे किसीकी बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती थी। अतः उन्होंने तलवार को ही धर्म प्रचार का प्रधान साधन समझा और अल्लाह मियाँ ने भी अपने पैगम्बर की पुष्टि में उनके इच्छानुकूल आयत आसमान से उतारना प्रारम्भ कर दिया जिसके अनेक नमूने पाठकों के विचारार्थ उद्धृत किये गये हैं

अरबवासियों की असंगठित अवस्था और हजरत मुहम्मद का धर्म के नाम पर बलात्कार

हजरत मुहम्मद साहब तथा उनके अनुयायियों के हृदयों में;

अपने सम्प्रदाय के फैलाने के लिये कितनी उत्तेजना थी इसका अनुमान आपने प्रथम लिखे हुए प्रमाणों से कर लिया होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस समय अरब की भूमि में हज़रत मुहम्मद साहब ने अपने नूतन सम्प्रदाय का प्रचार करना आरम्भ किया था उस समय अरब की सामाजिक तथा राजनैतिक अवस्था अत्यन्त ही गिरी हुई थी, वहाँ के मनुष्यों में मनुष्यत्व की बहुत कमी थी, वे जङ्गली पशुओं के सदृश जीवन व्यतीत करते थे तथा लूट मार करना जीविका उपार्जन का उनका एक प्रधान साधन था। इस कारण अधिक समय उनके परस्पर लड़ने ही में प्रतीत होता था। उनमें न तो कोई जातीय सङ्गठन ही था और न धार्मिक एकता थी। हज़रत मुहम्मद साहब ४० वर्ष की अवस्था तक तो आसपास के प्रदेशों में व्यापार आदि के निमित्त सैर करते रहे जिससे उन्होंने बहुत कुछ अनुभव प्राप्त किया और ४० वर्ष की अवस्था में अरबनिवासियों को एक धार्मिक बन्धन में संश्लेषण करने की चेष्टा की, परन्तु यह बड़ा ही दुस्तर कार्य था। किसी अन्य साधन को उपयुक्त न पाकर उन्होंने तलवार को ही बड़ा उत्तम साधन समझा. क्योंकि इसके द्वारा लोग भय से शीघ्र उनके झण्डे के तले एकत्र हो जायँगे और वैसे मनुष्यों में सदुपदेश द्वारा प्रचार करना सरल नहीं था। जङ्गली तथा वहशी जातियों में सद्धर्म का प्रचार करना बहुत ही तपस्या का काम है। हाँ मारपीट कर उन्हें अधीन करना तथा किसी सम्प्रदाय पर ले आना

आसानी से हो सकता है, परन्तु इसका भावी पर परिणाम बहुत ही बुरा होता है। अरब-निवासियों की इस शोचनीय अवस्था का चित्र उर्दू भाषा के महाकवि हाली ने बहुत उत्तम खींचा है, जिसे पाठकों के अवलोकनार्थ उद्धृत किया जाता है:—

(देखिये मोसद्दस हाली):—चलन उनके जितने थे सब वहशियाना। हरएक लूट और मार में था यगाना॥ फसादों में कटता था उनका ज़माना। न था कोई कानून का ताज़ियाना॥ वह थे कत्लो गारत में चालाक ऐसे। दरिन्दे हो जंगल में बेबाक जैसे॥१॥ न टलते थे हरगिज़ जो अड़ बैठते थे॥ सुलझते न थे जब झगड़ बैठते थे। जो दो शख्स आपसमें लड़ बैठते थे। तो सदहा कबीले बिगड़ बैठते थे॥ बुलन्द एक होता था गरवां शरारा। तो उसमें भड़क उठता था मुल्क सारा वह बक्र और तग़लबकी* बाहम लड़ाई। सदी जिसमें आधी उन्होंने गवांई॥ कबीलों की कर दी थी जिसने सफाई।

---

* अरब में यह युद्ध हरब बसूस के नाम से प्रसिद्ध है। उसका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ कि किसी मनुष्य का ऊंट खेत में चला गया। खेत वाली स्त्री ने उसे अपने खेत में चरते हुए देख कर मारा। इस पर क्रुद्ध होकर ऊंट वाले पुरुष ने उस स्त्री की छाती काट ली। बस इसी बात पर सन् ४९४ ई० से ५३५ ई० तक बराबर युद्ध रहा। प्रथम यह युद्ध बकर के घराने तथा तग़लब के घराने वालों में आरम्भ हुआ परन्तु धीरे धीरे अरब के समस्त घराने इसमें सम्मिलित हो गये। और आरम्भ सेलेकर अन्त तक सत्तर सहस्र मनुष्य मारे गये।

थी एक आग हरसू अरब में लगाई ॥ न झगड़ा कोई मुल्की दौलत का था वह। करिश्मा इक उनकी जहालत का था वह ॥३॥ इसी तरह एक और खूंरेज बेड़ा। अरब में लकब हर्बे वाहिस† है जिसका॥ रहा एक मुद्दत तक आपस में बरपा। बहा खून का हर तरफ़ जिसमें दरया॥ सबब इसका लिखा है यह असमई ने। कि घुड़दौड़ में चोन्द की थी किसी ने ॥ ४ ॥ कहीं था मवेशी चराने में झगड़ा। कहीं पहिले घोड़े बढ़ाने प झगड़ा॥ लबेजू कहीं आने जाने पै झगड़ा॥ कहीं पानी पीने पिलाने पै झगड़ा युंही रोज होती थी तकरार उनमें। युंही चलती रहती थी तलवार उनमें॥ जो होती थी पैदा किसी घर में दुखतर। तो खौफे समातत सवेरहम मादर ॥ ५॥ फिरे देखती जब थी शोहर के तेवर कहीं जिन्दा गाड़ आती थी उसको जाकर॥ वह गोद ऐसी नफरत से करती थी खाली। जने साँप जैसे कोई जननेवाली ॥ ६ ॥

इस प्रकार के लड़ाके और झगड़ालू पशु सम्पत्ति रखने वाले लोगों में हजरत मुहम्मद साहब नें प्रचार प्रारम्भ किया।

---

† अरब देश में यह लड़ाई सन ५६८ ई० से सन ६३१ ई० तक जारी रही। वाहिस नामक एक घोड़ा था, घुड़दौड़ में वह आगे बढ़ा चाहता था एक पुरुष ने उसको हिलकरा दिया। बस, इतनी ही बात पर इतना बड़ा घोर युद्ध हो पड़ा कि इस युद्ध में घराने के घराने कट मरे। इस युद्ध का अन्त उस समय हुआ जब उनमें से कितने घराने के लोग मुसलमान बनने लग गये थे।

भला यह कितना कठिन था कि सीधी बातों से समझा बुझाकर उन्हें इस्लाम धर्म पर लाया जावे। अतः 'जैसे के साथ तैसा' कहावत के अनुसार उन्होंने तलवार को दीन-प्रचार करने का बढ़िया साधन बनाया जिसमें उन्हें सफलता प्राप्त हुई। हजरत मुहम्मद् साहब के हृदय में अपने सम्प्रदाय के प्रचार करने की अग्नि धधक रही थी. वे चाहते थे कि उनके जीवन काल ही में समग्र अरब मुसलमान बन जाय तथा अरब में सिवाय मुसलमान के कोई रहने न पावे। उनका हृदय इस बात को पसन्द नहीं करता था कि अरब की भूमि में दो प्रकार के सम्प्रदाय मानने वाले लोग विद्यमान रहें, वरन् उनके विचार में एक स्थान में दो सम्प्रदाय मानने वालों का निवास करना ठीक नहीं था, अतः येन केन प्रकारेण इतर सम्प्रदाय वालों को मुसलमान बनाना आवश्यक ही था, सुनिये इस विषय में स्वयं हजरत मुहम्मद् साहब का कथन है:—(देखिये हदीस मिश्कात शरीफ़, खण्ड ३, किताबुल जहाद, बाबुल जज़िया अध्याय २):—

"वअन् इब्न अबास क़ाल क़ाल रसूलिल्लाहो सल्लाहो अलैहे वसल्लम ला तसलहा क़िब्लतानो फील अर्ज़ वाहेदतिन व लैस अललमुसलिमे जज़यतुन रवाहो अहमद वत्तिमिज़ी व अबू दाऊद"

अर्थात् अबास के पुत्र का कथन है कि हज़रत मुहम्मद् साहब ने कहा कि किसी एक देश में दो क़िबले (उपासना के मन्दिर) का रहना ठीक नहीं है और मुसल्मानों के लिये

जज़िया कर नहीं है। इस कथा को अहमद, तिमिज़ी तथा अबू दाऊद ने वर्ण किया है।

हज़रत मुहम्मद साहब के कथन का अर्थ स्पष्ट है। उनके मतानुसार यदि किसी देश में इस्लाम का कुछ प्रचार हो जावे और मुसलमानों ने वहाँ एक उपासना मन्दिर बना लिया हो तो पुनः उस देश में किसी इतर सम्प्रदाय का मन्दिर नहीं रहना चाहिये। न तो वहाँ कोई गिर्जाघर ही रह सकता है और न वहाँ कोई हिन्दुओं का मन्दिर ही रह सकता है। आज कल जो मुसलमान इस बात का आन्दोलन करते हैं कि मसजिदों के सामने से कोई हिन्दू बाजा बजाते हुए जलूस न निकाला करें वह इसी स्पिरिट का परिणाम है। यदि इस समय मुसलमानों का वश चलता तो अवश्य वे इस बात की चेष्टा करते कि जिला शहर वा जिस ग्राम में मुसलमानों की मसजिद हो वहाँ हिन्दू मन्दिर नहीं रहना चाहिये। इस हदीस के भाष्य में मौलाना अब्दुल हक़ मुहम्मद पर नहीं करना चाहिये। परन्तु मोहद्दिस साहब इसे मुसलमानों के लिये अपमान सूचक समझते हैं अतः मुहम्मद के कथनानुसार उन्हें उस देश में नहीं रहने का राय देते हैं। पर यह कर औरों के लिये अपमान क्यों नहीं समझना चाहिये। वास्तव में यह अपमान सूचक है, जिसे मोहद्दिसे देहलवी ने स्वीकार किया है। अतः पाठक समझ सकते हैं कि हजरत मुहम्मद साहब के कथन में जितना पक्षपात है उससे कहीं अधिक पक्षपात उनके भाष्य कर्त्ता महाशय के लेख में है।

इतर धर्मावलंबियों को मुसलमान न होने से देश निकाले का अत्याचार

हजरत मुहम्मद साहब अपनी धुन के बड़े पक्के थे, मरते दम तक वह इसी चेष्टा में रहे कि इसलाम से इतर धर्मावलम्बियों को अरब की भूमि से निकाल बाहर करें। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये वे समस्त जीवन दत्तचित्त रहे। जहाँ शक्ति बढ़ी कि अपनी धुन में लग गये। अरब में शक्तिशाली हो जाने पर तो उन्होंने अरब के इतर धर्मावलम्बियों के लिये नियम ही बना दिया कि चाहे तो वे मुसलमान हो जायें चाहे देश से निकल जायें। देखिए इसी आशय की एक हदीस किताब मिशकात शरीफ, किताबुल जिहाद, बाब इखराजुल यहूद, मिन ज़ज़ीरातिल अरब के अध्याय १ में इस प्रकार है—

"अन अबी होरैरते काल बैनना नहनी फील मसजिदे खर-जन्नबीयो सल्लल्लाहो अलैहे वसल्लम् फकाल अन्तलकू एला यहू-देफ़ खरजना मअहूहत्ता जेना वैतल मदरासे फकामन्नबीयो सल्ल-ल्लाहो अलैहे वसल्लम् फ़काल या माशर यहूदऽसलमूऽतसलमूऽ आलमूऽअन्नऽलअरज लिल्लाहे व लेरसूले ही व इन्नी ओरी दो अन अजलैकुम मिन हज़िहील अर्जे व मन व जद मिनकुम् बे माले ही शय्यन फयबम्हू-मुत्तफ़िक अलैहे।"

अर्थात अबू होरैरा का कथन है कि जिस समय हम लोग मसजिद में थे (उस समय) मुहम्मद साहब (घर) से बाहर आये और कहा उठो और यहूदियों की ओर चलो। इस

पर हम लोग उनके साथ बाहर आये और एक पाठशाला में पहुँचे (जो यहूदियों की थी) तो (यहाँ पर) मुहम्मद साहब खड़े हो गये और कहने लगे कि हे यहूदियों के जत्थेवालो! तुम लोग मुसलमान बन जाओ जिससे शांति पूर्वक रह सको और जान लो कि निश्चय यह पृथ्वी अल्लाह और उसके रसूल (मुहम्मद) के लिये है और निश्चय पूर्वक मैं चाहता हूँ कि तुम्हें इस भूमि से निकाल डालूँ अतः जिनके पास कुछ माल असबाब है उन्हें चाहिये कि उसे बिक्री कर दें"।

इस पर टीका टिप्पणी करने की कोई आवश्यकता नहीं। उपर्युक्त कथन से तो एक साधारण बुद्धि का मनुष्य भी समझ सकता है कि लोगों को मुसलमान बनाने के लिए बाध्य किया जाता था। सोचने की बात है कि जिन यहूदी बेचारों के अरब की भूमि में घर होंगे जिनके बाप दादों ने अपने परिश्रमसे धन सम्पत्ति कमा कर उस देश में अपनी सन्तानों के जीवन निर्वाह करने के लिए साधन एकत्रित कर दिये हों तो ऐसे लोगोंको केवल इस अपराध पर कि उनकी आत्मा उन्हें मुसलमान होने के लिए नहीं कहती अतः वे अपनी जन्मभूमि छोड़ने पर बाध्य किये जायें। क्या यह बाध्य करने की बात नहीं है कि "हे यहूदियो! चाहे तुम मुसलमान बन जाओ अथवा अपना सामान आदि उठाकर अपनी मातृभूमि तथा घरबार को छोड़ कहीं अन्यत्र चले जाओ" मातृभूमि को छोड़ना कौन चाहेगा, देश निकाले के दण्ड को कौन सहन कर सकेगा, अतः लाचार

होकर मुसलमान बन हो जाना होगा। कल्पना कीजिये कि यदि ब्रिटिश सरकार, जिसके हाथ में इस समय महानशक्ति है, अपनी हिन्दुस्तानी प्रजा से यह कहे कि तुम लोग सब क्रिश्चियन बन जाओ नहीं तो हिन्दुस्तान छोड़ कहीं इतर देश में चले जाओ तो क्या ऐसी कार्यवाही हमारी सरकार की क्रिश्चियन धर्म फैलाने के लिए बलात्कार नहीं होगा? और यदि मुसलमान इसके समाधान में ऐसा कहें कि चूंकि हजरत मुहम्मद साहब अरब को मुसलमान देश बनाना चाहते थे और एक हद तक बन भी गया था अतः उनके लिये यह उचित था कि इतर धर्माव-लम्बियों को वहाँ बसने न दें तथा जो पहिले से बसे हुए हैं उनको वहाँ से निकाल दें तो हम ऐसे मुसलमान भाइयों से पूछते हैं कि कल्पना करो कि इस समय इङ्गलैण्ड द्वीप क्रिश्चियन देश है इस लिए यदि वहाँ की सरकार यह कानून पास कर दें कि उस देश में क्रिश्चियन के अतिरिक्त और कोई न बसने पावे तथा इतर धर्मावलम्बी जो वहाँ लाखों वर्षों से पीढ़ी दर पीढ़ी वहाँ बसे हुए हैं वह इङ्गलैण्ड से निकल जायें, अन्यथा क्रिश्चियन बन जायें तो ऐसी दशा में हम मुसलमान भाइयों से पूछते हैं कि वे अपने हृदयों पर हाथ रख कर कहें कि क्या वे ऐसे कार्य्य को घोर अन्याय तथा बलात्कार नहीं समझेंगे और क्या ऐसी कार्य्यवाही को उनकी आत्मा शक्ति का दुरुपयोग करना नहीं बतलायेगी? अवश्यमेव यह शक्ति का दुरुपयोग तथा बलात्कार है जिनके द्वारा दीन इसलाम अरब तथा इतर देशों

में प्रचार हुआ। जीवन पर्यन्त हजरत मुहम्मद साहेब दीन के प्रचार के लिए निर्बलों पर बलात्कार करते रहे तथा मरते दम भी अपने अनुयायियों को उसी कार्य को स्थिर रखने के लिए उपदेश कर गये जिसके परिणाम स्वरूप संसार में इसलाम के प्रचार के लिए रक्त की नदियाँ बहाई गई।

हजरत साहब की घोर वसीयत और खलीफा उमर की ताली

देखिये मरते समय हज़रत ने क्या वसीयत की है। (देखिये मिशकात शरीफ उपरोक्त हदीस के आगेवाली हदीस):—

"अन इब्न अबास रज़यल्लाहो अब होमा अन्न रसूलल्लाहो अलेहे वसल्लम् अवसय बसलासतिन क़ाल अखर जुलमुशरे कीन वे ज़ज़ीरतिल अर्बें इत्यादि"

अर्थात् अबास के पुत्र का कथन है कि हज़रत मुहम्मद साहब ने मरते समय तीन बात की वसीयत की। उनमें से एक तो यह थी कि जो उन्होंने कहा कि मूर्त्तिपूजकों को अरब के द्वीप से बाहर निकाल दो"—इत्यादि

इसी प्रकार की एक हदीस (कथा) मुस्लिम ने भी अपनी किताब हदीस मुस्लिम मिशकात् शरीफ़ के उपरोक्त कथा के आगे उद्धृत की है। यथा:—

'अन जाबिर बिन अब्दुल्लाहे क़ाल अख़बर नी उमरुन बिनऽलख़तावे अतहुसमेअ रसुलल्लाहो अलेहे वसल्लम् यकूलो

लअखरोजन्नऽल यहूदेवऽन्न सारा मिन जज़ी रतिल अबँ हत्ता. ला अदओ फीहा मुसलेमन।

अर्थात् अब्दुल्लाह के पुत्र उमर ने मुझे बतलाया कि उन्होंने हज़रत मुहम्मद साहब को यह कहते हुए सुना था कि निः-सन्देह मैं यहूदियों और ईसाइयों को अरब के द्वीप से निकाल बाहर करूंगा यहां तक कि इसमें मुसलमानों के अतिरिक्त और कोई रहने न पावे।

ऊपर की दोनों हदीसों (कथाओं) से जाना गया कि जीवन भर तो हज़रत मुहम्मद साहब अरब से यहूदी तथा ईसाइयों के बाहर निकालने की चेष्टा में रहे तथा मरते दम तक अनुयायियों को वसीयत कर गये कि मूर्त्तिपूजकों को इस देश से निकाल दिया जाय, हाँ यदि ये मुसलमान हो जायँ तो वे अरब में ठहर सकते हैं।

मुसलमानों के इतिहास के पढ़ने से विदित होता है कि हज़रत मुहम्मद साहब के पश्चात उनके अनुयायियों ने ठीक उनके आदेशानुसार कार्य किया जैसा कि मिशशरीफ़ की उप-राक बाब के तीसरे अध्याय में वर्णन है। यथा :—

'अब इब्न उमरिन रज़यल्लाहो अनहोमा अन्न उमरबिनऽ लखे ताबे अजलयऽल यहूद वऽन्नसारा मिन अर्जिऽल हेजाज व कानरसुलुल्लाहो सलल्लाहो अलेहे वसल्ल मलम्मा ज़हर अला अहले खैबरिन अराद अंख्य खरोजुऽल यहूद मिनहो व कानतिऽल अर्जो लम्माजहर लिल्लाहे व लेरसूले ही व लिल मुसलयीन

"फसअलऽल यहूदो रसुलल्लाहे सललापो अलहे वसल्लम अय्य-
तरो कहूम अलाअंय्यतफ़ुऽलअमल वलहुम लिसफ़ुस्समरे यक़ाल
रसुलुल्लाहो अलैह वसल्लम न करो कुम अलानाल्क माशेना
फऽक़ुरऊऽहत्ता अजल हुम उमरून फ़ीयमारते हो, पहातिमाय
व अरीहाय"

अर्थात् उमर के पुत्र का कथन है कि ख़ेताब बेटे उमर ने यहूदियों और ईसाइयों को हेजाज की भूमि से बाहर निकाल दिया था और जब हजरत मुहम्मद साहब ने खैबर के निवासियों पर जय प्राप्त किया था तो उन्होंने इच्छा की थी कि यहूदियों को वहां से निकाल बाहर करें। क्योंकि जो भूमि जीत ली जाती थी वह अल्लाह, रसूल, तथा मुसलमानों को हो जाती थी। इस पर यहूदियों ने हज़रत मुहम्मद साहब से निवेदन किया कि उनको उस देश से निकाला न जावे, वरन् इस शर्त पर रहने दिया जावे कि जो कुछ खेती द्वारा प्राप्त करें उसका आधा मालगुजारी दिया करें। इस पर हजरत मुहम्मद साहब ने कहा कि हम यह शर्त स्वीकार करते हैं और जब तक हमारी इच्छा होगी तब तक हम तुम्हें इस भूमि में रहने देंगे (अर्थात् जब हमारी इच्छा होगी हम तुम्हें इस भूमि से निकाल सकेंगे।

अपने पिछले लेखों में मैं अनेक प्रामाणिक लेखकों और विद्वानों के उद्धरण देकर यह दिखा चुका हूँ कि इस्लाम धर्म किस प्रकार उसको न मानने और न स्वीकार करने वालों की हत्या करने तक की आज्ञा देता है और इस सम्बन्ध में उसकी

शिक्षा कितनी अनैतिक, सदाचारहीन तथा मानव धर्म के विरुद्ध है। स्वामी श्रद्धानन्द जी की हत्या का कारण कुछ भी हो पर इसमें संदेह नहीं कि इस्लाम की शिक्षा इस प्रकार की हत्याओं के लिये मुसलमानों को प्रोत्साहन देती है। बीसवीं शताब्दि में, सभ्यता के युगमें, इस्लाम की इस शिक्षा को रहने देना या उसका प्रचार करना संसार की शान्ति के लिये कहां तक उचित होगा यह सोचना मुसलमानों का ही नहीं सब मनुष्यों का आवश्यक कर्तव्य है। मुझे इस्लाम से कोई वैर नहीं और न मैं इतना धर्मान्ध हूं कि उसे मुफ्त बदनाम करना चाहता हूँ। पर हाँ वर्तमान हिन्दू मुस्लिम झगड़ों और विशेष कर स्वामी जी की हत्या के बाद प्रत्येक विचार शील भारतवासी का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह सोचे कि ये अनर्थ क्यों होते हैं। इसी भाव और कर्तव्य से प्रेरित होकर मैंने यह पुस्तक लिखी है। देश के समझदार नेताओं और मुसलमानों से मेरा निवेदन यह है कि वे रोग की जड़ का पता लगायें और धर्म के नाम पर किये जाने वाले अनर्थों को रोक कर बुद्धि वाद का प्रचार देश में करें। इसी में देश और इस्लाम दोनों की भलाई है। अन्त में इस्लाम की शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ और मुख्य मुख्य मुसलमान और अंग्रेज इतिहासवेत्ताओं की सम्मतियों को देकर अपने लेख को मैं समाप्त करता हूँ। ये सम्मतियां मैं इसी लिये दे रहा हूँ कि जिससे पाठक यह जान जायें कि इस्लाम की शिक्षा के सम्बन्ध में मेरी ही नहीं वरन संसार के अनेक विद्वानों का यही मत है।

आर्थर गिलमैन साहब एम. ए. (Arther Gilman M. A.) अरब के अंग्रेजी इतिहास में लिखते हैं कि मुहम्मद ने मक्का पर अधिकार जमाते समय अपने अनुयायिओं से कहा कि—

Fight ! fight ! fight ! Let no idolateth perform the pilgrimage. Keep no faith with them. Kill them by fair means, beguile *them by stratgem*, disegard all *ties* of blood, friendsnip and humanity Sweep the unbelievers from the. face of the earth in the name of Allah and of the Propbet

अर्थ—लड़ो ! लड़ो ! लड़ो ! किसी काफिर को तीर्थयात्रा मत करने दो । उनसे ईमानदारी का वर्ताव मत करो, चाहे तो काफिरों को साधारण रीति से मारो और चाहे कपट से बहका कर मारो । उनसे खून का मित्रता का और मनुष्यता का सम्बन्ध छोड़ दो अल्लाह और रसूल के नाम पर काफिरों का नामोनिशान दुनिया के परदे से मिटा दो ।

मुहम्मद साहब तथा उनके नये धर्म के सम्बन्ध में सैयद मुहम्मद लतीफ ने "पञ्जाब का इतिहास" नामक पुस्तक में निम्न प्रकार से लिखा है ।

"The religion of Islam was founded by Mohanmad, an Arabian of the tribe of Quraish, who announced to his oountrymen a Divine revelation which he was commanded to promulgate with the Sword. Mohammad called the latent passions and talents of the arabs into activity and animated them with a new spirit Armed with the Quarn and the sword and supported by the

enthusiastic ardour of his followers Mohammad waged a war with the civil and religious institutions of the world, and introducing new politics and new manners changed the political and moral condition of things. Mohammad propagated his religion by the sword. 'The Sword' "Said he is the Key of Paradise and Hell" History of the Panjab by Said Mohammad Latif.

(कुरैश जाति के मुहम्मद नामक एक अरब निवासी द्वारा इस्लाम् धर्म का प्रादुर्भाव हुआ, जिसने अपने देशवासियों से कहा कि यह धर्म उसे ईश्वर द्वारा प्राप्त हुआ है। उसने तलवार के ज़ोर इस धर्म के प्रचार की आज्ञा दी है। मुहम्मद ने अरब निवासियों की गुप्त काम वासनाओं और शक्तियों को नवीन जीवन से सञ्चारित कर दिया इस प्रकार कुरान और तलवार से सुसज्जित मुहम्मद ने अपने अनुयायियों के उत्साह के बल पर, संसार के सब धर्मों और राज्यों से युद्ध ठान दिया और नई नीति और चालों को जारी करके राजनीति और इख़लाक़ में बहुत बड़ी तबदीली पैश कर दी। मुहम्मद ने "तलवार" द्वारा अपने धर्म का विस्तार किया। वह कहा करता था, "तलवार" स्वर्ग और नर्क की कुञ्जी है।) सैय्यद मुहम्मद लतीफ द्वारा प्रणीत "पञ्जाब के इतिहास" से उद्धृत।

Finally, a simple creature, not far from primitive animality a Barbarian. Such is the man who has conceived Islam and who by the strength of his arm and the sharpness of his sword has carved out of the world this Musalman Empire, —Andre Servire.

सारांश "एक साधारण मनुष्य प्रारंभिक पशुा के बहुत निकट, अर्थात् एक जङ्गली ऐसा व्यक्ति है जिसके बाहु के बल और तलवार की तेज़ धार से इस्लामी सलतनत को संसार में क़ायम किया।" (एण्ड्री सरवीयर)

"Islam therefore, o ves its birth to the hostility between Necca and Medinu Its first manifestations were acis of hostility against Mecca, and the aohesion of Yathreb (Medina) to the new faith was it spir.d by policy rathor than leligiou-Mohammad was receiveb at Modina with with sympathy because was the enemy of Mecca" Andre Servior,

इस लिए, इसलाम धर्म का जन्म मक्का और मदीना के विरोध के कारण हुआ। इसका आरम्भ मक्का के विरुद्ध किये हुए कार्यों द्वारा हुआ। यथ्रब (यानी मदीना) के लोगों को इस नये मज़हब की तरफ किसी मज़हबी जज़बे ने नहीं बल्कि हिकमत अमली ने राग़िब किया। मदीना मे मुहम्मद के साथ केवल इस लिये सहानुभूति दिखाई गई कि वह मक्का का शत्रु था। (एण्डी सरवीयर)

"Unquestionably the grand cause of the success of Islam was its use of the Sword. Withoute Islam the Arabs had not been the conquerors of the world, but with out war Islam itself had not baen. Here converts are made on the field of battle with the Sword at their throats.

"Tribes are in a single hour convinced of the truth of the new faith, because they have no alter native but extermination."—Marcus Dad,

निस्सन्देह इस्लाम धर्म की सफलता का एक बड़ा कारण उसका शस्त्रप्रयोग था। इस्लाम के बिना अरब निवासी संसार विजयी कदापि न हो सकते थे; किन्तु बिना युद्ध के इस्लाम ही न होता। युद्ध क्षेत्र में गरदनों पर अड़ी हुई तलवारों के बल से धर्म परिवर्तन किया गया है। कितनी ही जातियों को केवल एक घंटे में इस नवीन धर्म की सत्यता को स्वीकार करना पड़ा, कारण कि उनके लिए उस समय सर्वनाश के अतिरिक्त और कोई मार्ग न था। (मारकस दाद)

"Let those who promulgate my faith enter into no argument nor discussion, but, lay all who refuse oded-ience to the Law."

"To convince stubborn unbelievers there is no argu-ment like the Sword. Kill the ilolatorswl ereever you shall fird them." —Wasinton Irving.

मेरे धर्म के फैलाने वालों को चाहिये कि वे इन सिद्धान्तों को न मानने वालों के साथ किसी तरह का भी बहस मुबाहिसा न करें, किन्तु जो धर्म में आने से इनकार करें, उन सबको क़त्ल कर डालें।

ज़िद्दी काफ़िरों को विश्वास दिलाने का तलवार से अच्छा दूसरा कोई ज़रिया नहीं है। मूर्त्तिपूजक जहाँ कहीं पाओ क़त्ल कर डालो। (वाशिङ्गटन इरविङ्ग)

"If we look into the Quran, we find many tokens of this uncompromising spirit. (From Kuran)

"When you meet those who misbelive, then strike

off head until you have massacrod then and bind fast the ebonds. (-Sura Bakar)

"Allah promised you man. spoils. the spoils are Allah's and prophet's. (Sura Inpal)

"How won there be a treat to the idolators, a trety with Allah and His Apostle.

"Take not your fathers not your pbretleron for association, they love misbelief and hate the True Faith."

(Arthur Gilman.)

यदि हम कुरान पढ़ें तो हमें उसमें दूसरों से विरोध करने वाले भावों से पूर्ण बहुत से स्थल मिलेंगे।

जब तुम काफिरों से मिलो, उनका सिर, काट डालो, जकड़ कर बाँध लो और उनका नाश कर डालो।

अल्लाह ने तुम्हें बहुत सी लूट देने की प्रतिज्ञा की है, लूट का माल अल्लाह और रसूल का हक़ है।

कैसे हो सकती है सुलह मूर्तिपूजकों से, और अल्लाह और अल्लाह के रसूल से?

"अपने बड़ा और साथियों का भी साथ न करो, अगर वह मुन्किर हों और सच्चे मज़हब से नफ़रत करते हों।

(आर्थर गिलमैन)

मुद्रक—श्रीमहतावराय, सरस्वती प्रेस, काशी।